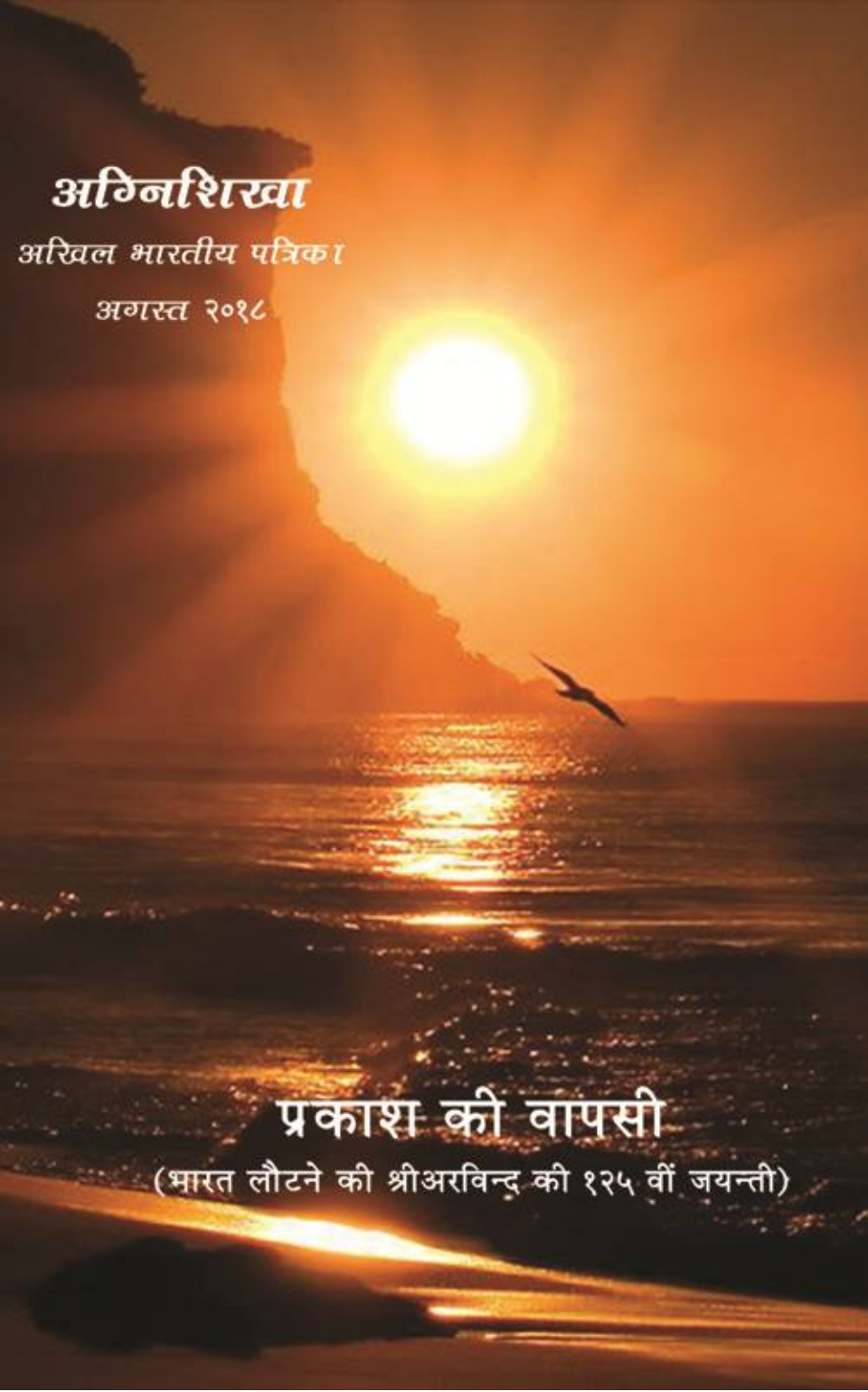
अग्निशिखा
अखिल भारतीय पत्रिका
अगस्त २०१८
प्रकाश की वापसी
(भारत लौटने की श्रीअरविन्द की १२५ वीं जयन्ती)

विषय-सूची

सन्देश/सम्पादकीय		३
दिव्य दृष्टि (सॉनेट)	श्रीअरविन्द	५
भागवत मुहूर्त	श्रीअरविन्द	६
संसार में रहते हुए उच्चतम सत्य को पाना है	नलिनीकान्त गुप्त	८
श्रीअरविन्द के प्रारम्भिक जीवन की कुछ रोचक बातें	माधव पण्डित	११
सांसारिकता, पारलौकिकता और श्रीअरविन्द का योग	श्रीअरविन्द	१६
बड़ौदा की महारानी के नाम श्रीअरविन्द का एक पत्र		१८
श्रीअरविन्द का एक पत्र		२१
डॉ. सी.आर.रेड्डी का भाषण		२३
पॉण्डिचेरी में	'लाल कमल' से	२९
संस्मरण और क़िस्से	'लाल कमल' से	३३
"श्रीअरविन्द" के नाम के बारे में	नलिनीकान्त गुप्त	३८

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		३९
योग में उतार-चढ़ाव	नारायण प्रसाद 'बिन्दु'	४३
एक साधिका के नाम पत्र	'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६ से	४६
नव जीवन को पाने की चाह करो	नवजात जी	५०
'योग के तत्त्व' : नींव	श्रीअरविन्द	५४
आपकी आज्ञा शिरोधार्य है	वन्दना	५६

भूल-सुधार

क्षमाप्रार्थी हैं हम—अग्निशिखा की जून २०१८ की विषय-सूची में दैनन्दिनी पृ. ४२, का उल्लेख करना ही रह गया!!

सन्देश

श्रीअरविन्द धरती पर अतिमानसिक जगत् की अभिव्यक्ति की घोषणा करने आये। उन्होंने केवल अभिव्यक्ति की यह घोषणा ही नहीं की बल्कि आंशिक रूप से अतिमानसिक शक्ति को मूर्त रूप भी दिया और हमारे आगे उदाहरण रखा कि हमें अपने-आपको इस अभिव्यक्ति के लिए तैयार करने के लिए क्या करना चाहिये। जो सबसे अच्छी चीज़ हम कर सकते हैं वह यह है कि उन्होंने हमसे जो कुछ कहा है उस सब का अध्ययन करें, उनके उदाहरण का अनुसरण करने की कोशिश करें और अपने-आपको नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयार करें।

इससे जीवन को अपना सच्चा अर्थ मिलता है और यह हमें सभी विघ्न-बाधाओं को जीतने में सहायता देगा।

आओ, हम नयी सृष्टि के लिए जियें और हम युवा रहते और प्रगति करते हुए अधिकाधिक मज़बूत बनते जायेंगे।

३० जनवरी १९७२ —श्रीमाँ

सम्पादकीय : इंग्लैण्ड में १४ साल बिताने के बाद श्रीअरविन्द ने ६ फ़रवरी १८९३ को भारत-भूमि पर चरण रखे। ६ फ़रवरी २०१८—उनकी भारत-वापिसी की १२५वीं जयन्ती थी।

अगस्त के अग्निशिखा के अंश में हमने श्रीअरविन्द के जीवन के विविध पहलुओं का समावेश किया है। इसमें रवीन्द्रजी द्वारा लिखित 'लाल कमल' पुस्तक से भी कुछ लेख उद्धृत किये गये हैं।

भविष्यद्रष्टा श्रीअरविन्द

दिव्य दृष्टि

(सॉनेट)

तेरे आनन्द से अब हर दृष्टि है अमर :
मेरी आत्मा सम्मोहित नयनों से करने आयी है दर्शन;
फट गया एक आवरण और अब वे नहीं चूक सकते
तेरे विश्व-प्राकट्य का चमत्करण।

अन्तर-दर्शन के आनन्द में गृहीत
हर नैसर्गिक पदार्थ है तेरा ही एक अंश,
एक प्रहर्ष-प्रतीक तेरे सार से संस्कारित,
एक कविता सौन्दर्य के जीवन्त हृदय में आकृत,

रंग और रूपांकन की एक उत्कृष्ट कलाकृति,
विभव के पंखों पर समारूढ़ एक महत् माधुर्य;
अत्यन्त अवर वस्तुओं में भी स्वयं को करता उद्घाटित
अर्थपूर्ण सरणी का एक भारग्रस्त आश्चर्य।

सारे रूप हैं हर्ष की तेरी स्वप्न-बोलियों के प्रकार,
ओ परम पूर्ण, ओ अनन्त विशदाकार।

अनु. अमृता

—श्रीअरविन्द

भागवत मुहूर्त

"ऐसी घड़ियाँ आती हैं जब देव मनुष्यों के बीच विचरण करते हैं और हमारे जीवन-सलिल पर भगवान् का श्वास फैल जाता है; ऐसा भी समय आता है जब वे पीछे हट जाते हैं और मनुष्य अपने अहंकार की सामर्थ्य या निर्बलता से काम करने के लिए छोड़ दिया जाता है। प्रथम काल में थोड़ा-सा प्रयत्न करने पर बड़े परिणाम पैदा होते हैं और भाग्य बदल जाता है; दूसरे काल में ज़रा से परिणाम के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। यह सच है कि दूसरा पहले के लिए तैयारी कर सकता है, यज्ञ का थोड़ा-सा धुआँ बन कर स्वर्ग में जा सकता है और वहाँ से भगवान् की देन का आवाहन कर सकता है।

"अभागा है वह मनुष्य या राष्ट्र जो भागवत मुहूर्त के आने पर सोया हुआ रहे या उसके उपयोग के लिए तैयार न हो, क्योंकि उसके स्वागत के लिए दीया सँजो कर नहीं रखा गया है और उसकी पुकार की ओर से कान बन्द कर लिये गये हैं। पर कहीं अधिक अभागे हैं वे जो सशक्त और तैयार होते हुए भी उस शक्ति का अपव्यय करते हैं और उस मुहूर्त का दुरुपयोग करते हैं; उनके भाग्य में होती है पूरी न हो सकने वाली क्षति या एक महान् विनाश।

"भागवत मुहूर्त में धो डालो अपनी अन्तरात्मा से अपने-आपको धोखा देने की वृत्ति, ढोंगबाज़ी और झूठी आत्म-प्रशंसा ताकि तुम सीधे अन्तःपुरुष को देख सको और उसकी पुकार को सुन सको। तुम्हारी प्रकृति का कपट, जो पहले तुम्हें प्रभु की दृष्टि से तथा आदर्श की ज्योति से बचाये हुए था, अब तुम्हारे कवच में एक छेद बन जाता है और ऊपर से प्रहारों को निमन्त्रण देता है। यदि क्षण-भर के लिए तुम जीत भी गये तो वह तुम्हारे लिए और भी बुरा है, क्योंकि प्रहार तो बाद में आयेगा ही और तुम्हारी विजय के समय भी तुम्हें पटक देगा। शुद्ध होकर झाड़ फेंको समस्त भय को; क्योंकि यह घड़ी प्रायः भयंकर होती है, यह आग, बवण्डर और तूफ़ान की न्याईं है और है रुद्र का ताण्डव नृत्य; परन्तु जो इसमें अपने उद्देश्य की सच्चाई के बल पर खड़ा रह सकता है वही खड़ा रहेगा; चाहे वह वायु के पंखों पर उड़ भी क्यों न जाये, फिर भी वह ज़रूर वापिस आ जायेगा।

सांसारिक बुद्धिमत्ता को तुम अपने साथ अधिक कानाफूसी न करने दो, क्योंकि यह अप्रत्याशित की, गणनातीत की, अपरिमेय की घड़ी है। भागवत 'श्वास' की शक्ति को अपने तुच्छ यन्त्रों से न मापो, लेकिन विश्वास रखो और आगे बढ़ते चलो।

"लेकिन सबसे बढ़ कर, चाहे क्षण-भर के लिए ही क्यों न हो, अन्तरात्मा को अहं के कोलाहल से मुक्त रखो। तब रात को अग्नि तुम्हारे आगे चलेगी और तूफ़ान तुम्हारा सहायक होगा और तुम्हारी ध्वजा, जिस महानता को जीतना है उसके सबसे ऊँचे शिखर पर फहरायेगी।"

—श्रीअरविन्द

अधः लोक की अन्ध शक्तियाँ
अब भी किन्तु प्रबल हैं।
आरोहण की गति धीमी है,
लम्बा बहुत समय है।
तब भी सत्य उठेगा ऊपर,
तब भी शान्ति बढ़ेगी,
आयेगा वह दिन जन-जन
हिलमिल जब एक बनेंगे।
इसीलिए तो एक क़दम
बढ़ना भी बड़ी विजय है।
ज़रा-ज़रा कर दिव की ओर
मही को मुड़ना होगा।
धूमिल आत्मा एक रोज़
ज्योतिर्जग में जागेगी।

—श्रीअरविन्द

संसार में रहते हुए उच्चतम सत्य को पाना है

(पिछली शताब्दी में लिखा नलिनी दा का यह लेख क्या आज ही की कहानी नहीं सुना रहा?—सं.)

लगता है कि यह बाढ़, सूखा और विनाश की घड़ी है। कहीं यह महाप्रलय का मुहूर्त तो नहीं है?

स्वयं प्रकृति ने विनाश की यह प्रक्रिया शुरू की है और मनुष्य बड़े मनोयोग से उसमें सहायता कर रहा है। कहीं इससे उलटा तो नहीं कि मनुष्य ने प्रक्रिया शुरू की है और प्रकृति काम पूरा करने में हाथ बँटा रही है। शायद यह एक कुचक्र है, लेकिन परिणाम तो एक ही है। अब सवाल यह है कि क्या इसका कोई इलाज है? प्रकृति को स्थिर कैसे किया जा सकता है और मनुष्य को इस दलदल में से कैसे निकाला जा सकता है?

मनुष्य के लिए मूल कारण यह है कि वह चारों ओर से अपनी परिस्थितियों में घिरता जा रहा है, अपनी गतिविधियों की स्वाधीनता खो रहा है। चारों ओर से वह जकड़ा जा रहा है, चारों ओर की दीवारें उसे दबाती जा रही हैं, यहाँ तक कि उसका दम घुटने लगा है। जीवन के सभी क्षेत्रों में नियमों, विधानों, नियन्त्रणों की दीवारें ऊँची और ऊँची होती जा रही हैं और उन्हें सहना ज़्यादा-ज़्यादा कठिन होता जा रहा है। मनुष्य चाहे जिस ओर मुड़े, उसके आगे एक दीवार खड़ी दिखायी देती है जिसे पार करना असम्भव होता है, सब कुछ उलटा और कठोर होता दीखता है। उसमें स्वाभाविक रूप से यह वृत्ति जागती है कि वह सब कुछ तोड़-फोड़ कर नष्ट-भ्रष्ट कर दे। उसे यही एकमात्र समाधान दिखायी देता है : नष्ट करना और भयानक रूप से जीना। यही एकमात्र उपाय मालूम होता है। नष्ट करते-करते तुम अपने-आपको ही नष्ट कर डालो तो इसकी भी कोई चिन्ता नहीं।

वस्तुतः शुद्ध विनाश की भावना आत्म-विनाश की ओर ले जाती है। हिंसा एक ऐसा अस्त्र है जो चलाने वाले पर ही लौट कर आता है। हिंसा में, चाहे वह अपने विरुद्ध ही क्यों न हो, एक तरह का विकृत आनन्द आता है। शायद गुह्य दृष्टि से देखें तो आत्म-विरोधी क्रिया का दूसरा रूप है, दूसरों के विरुद्ध हिंसा। हमारे युग में आत्मघात कितना अधिक बढ़ गया

है। इसे केवल परिस्थितियों का परिणाम कह कर टाला नहीं जा सकता। जीवन-सलिल पर एक काली अन्धकार-भरी शक्ति विचर रही है जो समस्त जीवन और सर्जन की मूल चेतना का ही विनाश करने पर तुली है।

हम ज़रा रुक कर इस बात पर विचार कर सकते हैं कि क्या यही एकमात्र या सबसे अच्छा विकल्प है कि हम विनाश के कुएँ में जा गिरें। हम यह स्वीकार करते हैं कि समस्त अतीत और उसकी रचनाएँ हमारे आगे के मार्ग में बाधक हैं और उन्हें हटाना ही होगा। अगर आगे बढ़ना है तो मार्ग में आने वाली बाधाओं को, अतीत की दीवारों को हटाना ही होगा। लेकिन कैसे? उसे तोड़-फोड़ कर नष्ट करके? शायद यह सम्भव हो, पर किसी बाहरी रूप को तोड़ देने से ही उसका जीवन समाप्त नहीं हो जाता। उसके पीछे की भावना चली नहीं जाती। अतीत यदि आज भी डटा हुआ है तो इसका कारण यह है कि उसका आन्तरिक जीवन, उसकी भावना ज़िन्दा है। जब तक यह भावना जीती है तब तक चाहे जितने रूप तुम बनाते-बिगाड़ते रहो, मूल चीज़ में कोई फ़र्क न पड़ेगा। वह भावना रक्तबीज की तरह नये-नये रूप लेकर आती रहेगी। सच तो यह है कि विनाश लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य है नयी चेतना का, नयी भावना का उदय। यदि अन्दर नये मानक उत्पन्न हो जायें, नयी परिवर्तित प्रकृति आ जाये तो बाहरी जीवन, बाहरी रंग-रूप अपने-आप बदल जायेंगे। पेड़ की नसों में नया रस आ जाये तो पुरानी पत्तियाँ अपने-आप झड़ जायेंगी, पुरानी शाखाएँ गिर जायेंगी और उनके स्थान पर नये फूल-पत्ते आ जायेंगे। जब अण्डे के अन्दर बच्चा काफ़ी विकसित हो जाये तो छिलका अपने-आप टूट जाता है।

और फिर यह ज़रूरी नहीं है कि जेल हमेशा जेल ही बना रहे। वह मानव-चेतना के विकास के लिए एक अवसर हो सकता है। इसमें से होकर वह नये आयाम में प्रवेश कर सकती है, अतः हमारे लिए अभी तुरन्त करने-लायक काम यही है कि हम अन्दरूनी क्षेत्रों में विजय पाने की कोशिश करें, आन्तरिक सत्य को अपनायें, क्योंकि सत्य को पहले अन्दर खोजना होता है, वह एक बार वहाँ स्थापित हो जाये, उसके बाद ही जीवन का तथ्य बन सकता है। तो आओ, हम सब पहले अपनी सारी शक्ति, अपना सारा कौशल, अपनी जीवनी शक्ति और अभीप्सा सच्चाई के साथ इस आन्तरिक विजय के काम में लगा दें। आओ, हम थोड़ी देर के

लिए विनाश से मुँह मोड़ कर इस नवरचना के साहस-कार्य में लगें, हम जिस सत्य को बाहरी जीवन में फलते-फूलते देखना चाहते हैं उसे पहले अपने अन्दर अपने आन्तरिक जीवन में स्थापित करें; हममें से हर एक की चेतना में, हमारे समस्त कार्यकलापों और हमारी प्रेरणाओं में भी वह सत्य विराजमान हो। मनुष्य की सामूहिक चेतना में वही सत्य पूरी तरह स्थापित हो सकता है जो सभी मनुष्यों की आन्तरिक चेतना में प्रतिष्ठित हो चुका हो। हम सारे संसार में स्वाधीनता, समानता और भ्रातृभाव देखना चाहते हैं, लेकिन हमने अपने निजी जीवन में इन्हें लाने की कोशिश नहीं की, इसलिए हमारा प्रयास सफल नहीं हो पाया।

आन्तरिक शोध सचमुच एक युद्ध है और इसमें विजय पाना ज़रूरी है। इसके लिए साहस, शौर्य, शान्त बल, धैर्य, सहिष्णुता, आग्रह, कौशल आदि की सेना की ज़रूरत होती है। यहाँ काम करने के लिए विशाल क्षेत्र खुला रहता है। वहाँ जेल की घुटन नहीं होती, जिधर चाहो, जितना चाहो आगे बढ़ते चले जाओ। इसी क्षेत्र में अपनी आत्मा के साथ मिलन होता है।

हमेशा व्यक्ति समूह से आगे रहता है। आरम्भ व्यक्ति से होता है और फिर वहाँ से चीज़ मानव-समुदाय में फैलती है, लेकिन इस तरह आत्म-केन्द्रित होने का अर्थ यह नहीं कि तुम दुनिया-जहान से सम्बन्ध काट कर अपने-आपमें अलग-थलग बैठ जाओ। दुनिया की जेल से छुटकारा पाने का यह उपाय नहीं है कि तुम गुफाओं की जेल में जा बैठो। यह उपाय नहीं है कि तुम जंगलों और पहाड़ों में जा छिपो और वहाँ एकान्त-साधना करके प्रकाश पा लो, फिर दुनिया की ओर मुड़ो। बुद्ध, ईसा और विवेकानन्द ने ऐसा किया था, लेकिन यह रास्ता सबके लिए नहीं है। हमारा मार्ग बहुत कठिन है, लेकिन उस पर चलना तो पड़ेगा ही: क्योंकि हमने जो लक्ष्य चुना है वह भी आसान नहीं है। हम फिर से जेल का रूपक ले सकते हैं, चारदीवारी को तोड़ने या उसके अन्दर भाग्य के सहारे लाचार बन कर पड़े रहने की जगह हम एक सुरंग बना सकते हैं। हम प्रकाश को अपने अन्दर लाने की कोशिश कर सकते हैं।

हमें संसार में रहते हुए उच्चतम सत्य को पाना है। मानवता के प्रतिनिधि अर्जुन को श्रीकृष्ण ने यही सलाह दी थी—*युद्धस्व विगतज्वरः*—युद्ध करते समय भी यौगिक चेतना बनाये रखने के लिए कहा था।

हम कह सकते हैं कि जो कुछ हो रहा है, सारी दुनिया में जो कुछ दीख रहा है उसके बावजूद, हम संसार के सुन्दरतम काल में जी रहे हैं, क्योंकि समय आ रहा है जब संसार अपनी आत्मा का साक्षात्कार पायेगा।

—श्री नलिनीकान्त गुप्त

श्रीअरविन्द के प्रारम्भिक जीवन की कुछ रोचक बातें

इंग्लैण्ड से लौट कर श्रीअरविन्द पहली बार १८९४ में बंगाल गये। यह पारिवारिक पुनर्मिलन था। वे अपनी माँ स्वर्णलता, बहन सरोजिनी, भाई बारीन, मामा योगेन्द्र और नाना राजनारायण से मिले।

लेकिन उनकी माँ उन्हें न पहचान पायीं। वे किसी ऐसे मानसिक रोग से पीड़ित थीं जो उनके वंश में चला आ रहा था। उन्होंने कहा, "मेरा अरविन्द इतना बड़ा न था, वह तो छोटा-सा था।" उन्हें समझाया गया कि उनका बेटा इंग्लैण्ड से अपनी पढ़ाई पूरी करके लौटा है। अचानक स्मृति जागी और उन्होंने कहा, "मेरे अरविन्द की एक उँगली कटी थी और उसकी उँगली पर काँच से कटने का निशान था।" वह निशान दिखाने पर वे सन्तुष्ट हो गयीं।

उन दिनों वे कैसे लगते थे? सरोजिनी से सुनिये: "बहुत नाज़ुक चेहरा, अंग्रेज़ी फैशन के कटे हुए लम्बे बालोंवाले सेजदा (संझले भाई) बहुत शर्मीले व्यक्ति थे।"

शायद श्रीअरविन्द इन दिनों साल में एक बार पूजा के अवसर पर घरवालों से मिलने जाया करते थे। २५ अगस्त १८९४ को वे अपनी बहन सरोजिनी को लिखते हैं: "मुझे भय है कि मेरे लिए फिर से इतनी जल्दी, पूजा के दिनों में आना सम्भव न होगा। यद्यपि यदि मेरी चलती तो मैं कल ही चल पड़ता। न तो मेरा काम और न मेरी आर्थिक स्थिति इस बात की इजाज़त देती है।

"क्या तुम मुझे बारीन की अंग्रेज़ी निबन्ध-रचना की पुस्तक और उसके संकलनकर्ता का नाम भेज सकोगी? मुझे इस तरह की एक किताब की बहुत ज़रूरत है। उससे बंगला में ही नहीं, गुजराती में भी मुझे मदद मिलेगी। यहाँ इस तरह की सुगम पुस्तकें नहीं मिलतीं।

"मैं बिलकुल ठीक हूँ। मैं बंगाल से अपने साथ स्वास्थ्य की एक अच्छी निधि लेकर आया हूँ और मेरा ख़याल है कि उसे ख़तम करने में मुझे काफ़ी समय लगेगा। मैंने अभी अपने बाईसवें मील के पत्थर को पार किया है। पिछले १५ अगस्त, अपने जन्मदिन से मैंने बहुत अधिक बूढ़ा होने का अनुभव करना शुरू कर दिया है।"

जैसा कि उनके पत्र से दिखायी देता है, बड़ौदा में आ बसने के बाद तुरन्त ही श्रीअरविन्द ने भाषाओं का अध्ययन शुरू कर दिया था। उन्होंने अपना बंगला का ज्ञान और गहरा किया, संस्कृत अपने-आप सीखी और बड़ौदा में प्रचलित माध्यम गुजराती और मराठी का परिचय प्राप्त करना शुरू किया। उनकी पढ़ाई की भूख कभी शान्त न होती थी और वे हमेशा बहुत सारी पुस्तकें जुटाये रखते थे। उनकी एक बहन बसन्ती देवी कहती हैं : "ओरो दादा दो-तीन बक्से लेकर आया करते थे। हमलोग सोचा करते थे कि उनमें क़ीमती सूट और सेंट आदि मौज-शौक की चीज़ें होंगी। जब वे उन्हें खोलते तो मैं उन्हें देखती और आश्चर्य करती थी। यह क्या? कुछ मामूली से कपड़े और बाक़ी सब किताबें, किताबें और किताबें। क्या ओरो दादा ये सब पढ़ना चाहते हैं? हम सब छुट्टियों में गपशप और मौज करना चाहते हैं। क्या यह समय भी ये पढ़ने में ही ख़र्च करना चाहते हैं? लेकिन उन्हें पढ़ना पसन्द था। इसका यह मतलब नहीं है कि वे हमारी बातचीत और मौज में भाग नहीं लेते थे। उनकी बातचीत हमेशा हाज़िर-जवाबी और हास्य से भरी होती थी।"

और हाँ, वे कविता लिखते थे। उनकी कविता का पहला संकलन 'साँग्स टु मिर्टिला' १८९५ में व्यक्तिगत वितरण के लिए छपा था। उनकी अधिकतर कविताएँ तब लिखी गयी थीं जब वे केम्ब्रिज में पढ़ते थे (१८९०-९२)।

उन्होंने भारतीय साहित्य का गहरा अध्ययन शुरू किया। उन्हें महाभारत, भवभूति, कालिदास आदि में रस था। वे होमर, दांते और होरेस भी पढ़ते थे। उन्होंने वाल्मीकीय रामायण भी पढ़ी और उसके कुछ प्रसंगों का अंग्रेज़ी में अनुवाद भी किया। कहते हैं कि उनके रामायण और महाभारत के अनुवाद देख कर प्रसिद्ध विद्वान् प्रशंसक रमेश चन्द्र दत्त ने बड़ौदा में श्रीअरविन्द से कहा, "मुझे खेद है कि मैंने इस काम पर इतना अधिक परिश्रम किया। वह व्यर्थ था। अगर मैंने पहले आपका अनुवाद देखा होता तो मैं अपना

अनुवाद कभी न छपवाता। ऐसा लगता है कि आपके अनुवाद के आगे मेरा अनुवाद तो बच्चों का खिलवाड़ है।"

उन्होंने कालिदास, व्यास, महाभारत के मूल पाठ आदि विषयों पर आलोचनात्मक लेख भी लिखे। उनके दैनिक कार्यक्रम के बारे में अम्बालाल पुराणी लिखते हैं, "सवेरे चाय पीने के बाद श्रीअरविन्द कविता लिखा करते थे और यह काम दस बजे तक चलता रहता था। दस और ग्यारह के बीच स्नान और ग्यारह बजे भोजन। भोजन करते समय श्रीअरविन्द पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ा करते थे। वे चावल कम और रोटी अधिक लिया करते थे। दिन में एक बार मांस या मछली होती थी।

"बीच-बीच में ऐसे काल आते थे जब श्रीअरविन्द शुद्ध निरामिष भोजन लेते थे। उन्हें स्वाद की परवाह न थी। उन्हें महाराष्ट्रीय भोजन बहुत चरपरा और गुजराती भोजन में बहुत अधिक घी लगता था। एक बार उन्होंने तिलक के यहाँ भोजन किया जिसमें पूरी, दाल, चावल और सब्ज़ी थी। वह भोजन उन्हें पसन्द आया। श्रीअरविन्द को बड़ी रात तक पढ़ने और देर से सोने की आदत थी।..."

इन दिनों वे अपने परिवार को नियमित रूप से कुछ पैसा भेजा करते थे, अपनी माँ के भरण-पोषण, अपनी बहन सरोजिनी को बांकीपुर और छोटे भाई बारीन की शिक्षा के लिए भी पैसा भेजते थे। दोनों बड़े भाई इंग्लैण्ड से लौट आये थे और अच्छे काम पर लग गये थे परन्तु वे कोई सहायता न करते थे। इसके बारे में श्रीअरविन्द ने अपनी स्वाभाविक उदारता से यूँ सफ़ाई दी:

"दादा (विनय भूषण) कूच बिहार राज्य की सेवा में हैं और उन्हें जीवन का उच्च स्तर रखना पड़ता है। मनमोहन की शादी हो गयी है और शादी एक ख़र्चीली ऐय्याशी है।"

इंग्लैण्ड में रहते हुए श्रीअरविन्द ने आई.सी.एस के परिवीक्षार्थी के समय नौकरी के लिए बंगाल को चुनने के कारण कुछ बंगला सीखी थी। उन्होंने बड़ौदा आकर भाषा और उसके साहित्य के अपने अध्ययन को आगे चलाया जैसा कि उनके बंकिम चन्द्र और माइकेल मधुसूदन के अध्ययन से पता लगता है। फिर भी उन्हें अधिक गहरे अध्ययन की, और विशेषकर 'चलित बंगला' की आवश्यकता महसूस हुई। इसके लिए उन्होंने १८९८

में दिनेन्द्र कुमार रॉय नामक ख्याति-प्राप्त साहित्यिक की सेवाएँ प्राप्त कीं। दिनेन्द्र अध्यापक की अपेक्षा साथी अधिक थे। यह एक नमनशील व्यवस्था थी। वे श्रीअरविन्द के साथ रहते और ज़रूरत के अनुसार उनकी सहायता करते थे और उन्होंने श्रीअरविन्द से फ़्रेंच और जर्मन सीखीं। वे लगभग दो वर्ष, १८९८-९९ तक रहे और बाद में उन्होंने एक बंगला पुस्तक लिखी 'अरविन्द प्रसंगे' जो श्रीअरविन्द के उन दिनों के व्यक्तित्व, स्वभाव, रहन-सहन आदि पर अच्छा प्रकाश डालती है और बहुत रोचक है। उसमें से कुछ प्रसंग सुनिये :

"मैंने उन्हें पुराने ढंग के नागरा जूते, अहमदाबाद की मिल की मोटी धोती और शरीर पर ठीक-ठीक आती मिरज़ई पहने देखा। उनके लम्बे बाल बीच से काढ़े गये थे और कन्धों तक आते थे। उनकी आँखें स्वप्निल थीं। कुछ ही दिनों में मैं जान गया कि सांसारिक तुच्छता के लिए उनके हृदय में कोई स्थान न था। अरविन्द इस जगत् के मनुष्य नहीं, ऊपर से उतरे हुए देवता हैं। उनके जैसा मनुष्य, जिसने बचपन से चौदह वर्ष इंग्लैण्ड में पाश्चात्य सभ्यता के बीच, इतने वैभव और सुरुचि में बिताये, वह इतना सीधा-सादा और अपने देश तथा अपनी संस्कृति का प्रेमी कैसे हो सकता है?

"कुछ दिन प्रतीक्षा करने के बाद मैंने सीधा उनसे यह प्रश्न किया और उनका जवाब मुस्कान के साथ मिला, 'जो वहाँ जाकर दो-तीन वर्ष रह कर चले आते हैं वे वहाँ की बाहरी तड़क-भड़क से बहुत मोहित हो जाते हैं, लेकिन जो लम्बे समय तक रहते हैं वे यह जान सकते हैं कि उनकी संस्कृति में क्या अच्छा है और क्या बुरा। वे उसके अनुसार अपने-आपको गढ़ सकते हैं।'

"जिन दिनों मैं वहाँ रहता था (१८९८-९९) अरविन्द को अच्छी तनख़्वाह मिलती थी फिर भी मैं देखता था कि महीने के अन्त में उनका हाथ तंग रह जाता था यद्यपि उनके अन्दर ऐसी कोई बुरी आदत नहीं थी जो हर विलायत से लौटे हुए व्यक्ति में हम पाते हैं। एक दिन उन्हें धनादेश का फ़ॉर्म भरते देख कर मेरी इच्छा हुई कि मैं भी कुछ पैसा घर भेजूँ। जैसे ही मैंने उनके सामने यह प्रस्ताव रखा, उन्होंने मनीऑर्डर फ़ॉर्म भरना छोड़ दिया और अपनी थैली की आख़िरी पाई तक मुझे सौंप दी। उनकी झोली की हालत देखते हुए मैंने पैसा लेने से इन्कार किया, परन्तु आख़िर उनके

आग्रह पर और यह कहने पर कि मेरी ज़रूरत की अपेक्षा तुम्हारी ज़रूरत अधिक है, मुझे पैसे स्वीकार करने पड़े। महाराजा के एक मित्र खासी राव जादव अरविन्द से उनके प्रेमी हृदय, शिक्षा, सुनम्र और मधुर स्वभाव के कारण भाई की तरह प्यार करते थे। अरविन्द को हैट, कॉलर, टाई आदि पहनने की आदत न थी। जब उन्हें महाराजा के यहाँ भोजन या काम के लिए निमन्त्रण मिलता तो भी वे सादे कपड़े पहन कर और पिरेली टोपी लगा कर जाया करते थे। उन्होंने कभी नरम बिस्तर का उपयोग नहीं किया, जाड़ों में वे सामान्य-सा कम्बल ओढ़ते थे। उनका भोजन भी उनके कपड़ों और रहन-सहन की तरह सीधा-सादा था। एक शब्द में कहें तो वे पूरे ब्रह्मचारी का जीवन बिताते थे।

"यद्यपि वे बंगला बोल तो न सकते थे परन्तु उन्होंने संस्कृत सीखी थी और उनकी राय थी कि धरती पर जितने कवि उत्पन्न हुए हैं, वाल्मीकि उन सबसे महान् हैं। वे कहा करते थे कि वे दांते की कविता पढ़ कर मोहित होते और होमर पढ़ कर सन्तुष्ट होते थे, परन्तु उनमें से कोई वाल्मीकि के नज़दीक न पहुँच सकता था।

"शाम होने से पहले वे बरामदे में तेज़ी के साथ टहला करते थे।

"उनके पास एक पुरानी विक्टोरिया गाड़ी थी जिसमें ऐसा घोड़ा जुता होता था जिसकी चाल गधे की-सी थी। बड़ौदा के छोटे-बड़े सभी लोग अरविन्द को उनके सौम्य व्यवहार और परोपकारी वृत्ति के कारण जानते थे। बड़ौदा के बुद्धिप्रधान लोग उनकी असाधारण प्रतिभा के कारण उनका मान करते थे। उनके विद्यार्थी उन्हें देवता की तरह मान कर उन्हें मान और प्रेम देते थे। उनके पढ़ाने का तरीक़ा रूढ़िगत नहीं था और विद्यार्थी उनसे मुग्ध रहते थे।

"मैंने उन्हें बड़ी रात तक, मच्छरों की परवाह किये बिना एक रत्न-दीपक के आगे बैठ पुस्तकें पढ़ते या साहित्य के बारे में बातचीत करते देखा है। मुझे वे ध्यान में डूबे हुए एक योगी मालूम होते थे। उनके पास फ़्रेंच, जर्मन, अंग्रेज़ी, रूसी, यूनानी, लैटिन, हिब्रू आदि लगभग सभी यूरोपीय भाषाओं की पुस्तकें थीं। इनके सिवा संस्कृत की रामायण, महाभारत, कालिदास की सभी कृतियाँ आदि भी थीं। उन्हें रूसी भाषा बहुत प्रिय थी और वे कहा करते थे कि रूसी भाषा ही साहित्य में सबसे ऊँचा स्थान

लेगी। वे सप्ताह में दो-तीन दिन बंगला पढ़ा करते थे और प्रायः उसमें भी छुट्टी हो जाती थी। बम्बई के पुस्तक-विक्रेता, थाकर ऐंड आत्माराम राधा बाई सगुन, उन्हें लकड़ी के बक्सों में किताबें भेजा करते थे और मुझे यह देख कर आश्चर्य होता था कि महीना पूरा होने से पहले-पहले सब किताबें पूरी हो जाती थीं।

"उनकी हँसी बच्चों जैसी सरल और कोमल थी यद्यपि उनके ओठों पर दृढ़ संकल्प दिखायी देता था, परन्तु उनके हृदय में सांसारिक महत्त्वाकांक्षा या सामान्य मानव स्वार्थपरता का लेशमात्र भी न था। उनके अन्दर देवों में भी दुर्लभ मानव पीड़ाओं को शान्त करने के लिए आत्माहुति देने की लालसा थी।

"अरविन्द हमेशा सुख-दुःख, विपदा-सम्पदा, निन्दा-स्तुति से उदासीन रहते थे। वे सभी कठिनाइयाँ अक्षुब्ध मन से सह लेते थे।"

—श्री माधव पण्डित की अंग्रेज़ी पुस्तक 'श्रीअरविन्द' से

सांसारिकता, पारलौकिकता और श्रीअरविन्द का योग

भारत की आत्मा पर तुमने जो टिप्पणी लिखी है तथा "पारलौकिकता का बहिष्कार करके सांसारिकता पर इस प्रकार बल देने" के विषय पर 'क्ष' ने जो आलोचना की है उनके सम्बन्ध में मैं एक बात कहने की आवश्यकता अनुभव करता हूँ। मुझे ठीक समझ में नहीं आता कि यह आलोचना उसने किस प्रसंग में की या सांसारिकता से उसका अभिप्राय क्या था, लेकिन इस विषय में मैं अपना विचार स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ। भारत आने के समय से ही मेरा अपना जीवन और योग सदा ही सांसारिक और पारलौकिक दोनों रहे हैं तथा इन दोनों पक्षों में से किसी पर भी मैंने ऐकान्तिक बल कभी नहीं दिया। मेरी समझ में सभी मानवीय विषय सांसारिक हैं और उनमें से अधिकतर ने मेरे मानसिक क्षेत्र में प्रवेश पाया है तथा राजनीति जैसे कुछ-एक विषय तो मेरे जीवन के अंग भी बने हैं। पर साथ ही, जब से मैं बम्बई के अपोलो बन्दरगाह पर उतरा और मैंने भारत की भूमि पर पग रखा, मुझे आध्यात्मिक अनुभूतियाँ होने लगीं जो इस जगत् से अलग नहीं थीं बल्कि इसके साथ आन्तरिक एवं घनिष्ठ

सम्बन्ध रखती थीं। उदाहरणार्थ, मुझे 'अनन्त' का अनुभव हुआ, जो भौतिक देश में रमा हुआ है, तथा अन्तर्यामी का भी जो भौतिक पदार्थों में, घट-घट में, वास कर रहा है। साथ ही मैंने अपने-आपको उन अतिभौतिक लोकों एवं स्तरों में प्रवेश करते अनुभव किया जिनका जड़-स्तर पर अनेकविध प्रभाव पड़ता है तथा जो यहाँ परिणाम उत्पन्न करते हैं। इसलिए, जिन्हें मैं सत्ता के दो ध्रुव कहता हूँ उनमें तथा उनके बीच जो कुछ है उसमें कोई तीव्र भेद या असमाधेय विरोध नहीं अनुभव कर सका! मेरे लिए तो सब कुछ 'ब्रह्म' ही है और मैं सर्वत्र 'भगवान्' को ही देखता हूँ। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह सांसारिकता को त्याग कर केवल पारलौकिकता को ही चुने, और यदि उसे इस चुनाव से शान्ति प्राप्त होती हो तो वह बड़ा ही सौभाग्यशाली है। हाँ, स्वयं मुझे शान्ति प्राप्त करने के लिए ऐसा करने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। अपने योग में भी मुझे अपने दृष्टि-क्षेत्र के अन्दर आध्यात्मिक और भौतिक दोनों लोकों को समाविष्ट करने और केवल अपने निजी मोक्ष के लिए नहीं, बल्कि धरती पर दिव्य जीवन की स्थापना के लिए मनुष्यों के हृदयों और संसार के जीवन में भागवत चेतना तथा भागवत शक्ति की स्थापना के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा का अनुभव हुआ। यह लक्ष्य मुझे अन्य किसी भी लक्ष्य से कम आध्यात्मिक नहीं प्रतीत होता और मेरे विचार में यह तथ्य कि यह जीवन अपने क्षेत्र में पार्थिव कार्यों और पार्थिव वस्तुओं को ग्रहण करता है, इसकी आध्यात्मिकता को कलुषित नहीं कर सकता और न यह इसके भारतीय स्वरूप में कोई हेर-फेर कर सकता है। जगत्, वस्तुओं और भगवान् के सत्य स्वरूप एवं स्वभाव के सम्बन्ध में कम-से-कम मेरा विचार और अनुभव तो सदा से यही रहा है। यह मुझे उनका यथासम्भव निकटतर सर्वांग-सत्य प्रतीत हुआ और इसलिए मैंने इसकी खोज को सर्वांगीण योग के नाम से पुकारा है। निःसन्देह, प्रत्येक मनुष्य को यह स्वतन्त्रता है कि वह इस प्रकार की सर्वांगपूर्णता में अविश्वास करे, इसका त्याग कर दे; अथवा सम्पूर्ण पारलौकिकता की आध्यात्मिक आवश्यकता में ही एकदम विश्वास करे, परन्तु इससे मेरे योग का अभ्यास करना असम्भव हो जायेगा। निःसन्देह, मेरे योग में अन्य सभी लोकों के अनुभव का, परमोच्च आत्मा के स्तर तथा बीच के और सभी लोकों के अनुभव का तथा पार्थिव जगत्

और हमारे जीवन पर पड़ने वाले उनके प्रभाव का समावेश हो सकता है। किन्तु यह भी सर्वथा सम्भव हो सकता है कि 'परम पुरुष' या 'ईश्वर' के किसी एक ही स्वरूप की, जगत् के 'अधीश्वर' और हमारे एवं हमारे कर्मों के 'प्रभु' के रूप में शिव, कृष्ण की अथवा विश्वव्यापी सच्चिदानन्द की उपलब्धि पर ही कोई आग्रह करे तथा इस योग के सारभूत परिणामों को प्राप्त कर ले और फिर, यदि वह इस जड़ जगत् पर आत्मा की विजय एवं दिव्य जीवन के आदर्श को स्वीकार करे तो इन परिणामों से भी और आगे, सर्वांगपूर्ण परिणाम की ओर बढ़े। इसी दृष्टि और वस्तुओं तथा सत्ता के सत्यविषयक अनुभव ने ही मुझे 'दिव्य जीवन' और 'सावित्री' लिखने की प्रेरणा दी। निश्चय ही, परात्पर पुरुष का, ईश्वर का साक्षात्कार मुख्य वस्तु है, किन्तु प्रेम, आराधना एवं भक्ति के द्वारा उनके पास जाना, अपने कर्मों के द्वारा उनकी सेवा करना, और उनको जानना—निश्चय ही बौद्धिक ज्ञान के द्वारा नहीं बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति के द्वारा जानना—भी पूर्णयोग के मार्ग के लिए आवश्यक है।

CWSA खण्ड ३५, पृ. २३३-३५

बड़ौदा की महारानी के नाम श्रीअरविन्द का एक पत्र

यह सच है कि मैंने योगाभ्यास द्वारा उच्चतर आध्यात्मिक चेतना को प्राप्त कर लिया है जो योग द्वारा आती है और इसके साथ एक विशेष प्रकार की शक्ति होती है। विशेष रूप से ऐसी शक्ति जिसके द्वारा उन लोगों के साथ सम्पर्क रखा जा सकता है जो तैयार हों या उनकी उस आध्यात्मिक स्थिति की ओर सहायता की जा सकती है जो अपनी पूर्णता में अपरिवर्तनशील आन्तरिक स्थिरता, बल और आनन्द की अवस्था है। परन्तु यह आध्यात्मिक शान्ति और आनन्द मानसिक शान्ति और प्रसन्नता से बिलकुल अलग हैं, और उन्हें आध्यात्मिक तपस्या के बिना नहीं पाया जा सकता।

मुझे पता नहीं कि यह चीज़ ठीक तरह से आपको समझायी गयी है या नहीं। मैं संक्षेप में कह सकता हूँ कि चेतना की दो अवस्थाएँ हैं। व्यक्ति इनमें से किसी एक में रह सकता है। एक है उच्चतर चेतना जो जीवन

के खेल से ऊपर रहती और उस पर शासन करती है; इसे 'आत्मा', 'स्व' या 'भगवान्' कहा जाता है। दूसरी है सामान्य चेतना जिसमें लोग रहते हैं; यह एकदम ऊपरी या छिछली होती है, यह जीवन के खेल के लिए आत्मा का यन्त्र है। जो सामान्य जीवन में रहते और कार्य करते हैं उन पर पूरी तरह मन की सामान्य गतिविधियों का शासन होता है और वे स्वभावतः दुःख, सुख, चिन्ता और कामना या हर ऐसी चीज़ के अधीन होते हैं जिससे सामान्य जीवन बनता है। वे मानसिक अचञ्चलता और सुख तो पा सकते हैं, परन्तु ये चीज़ें कभी स्थायी या सुरक्षित नहीं होतीं। परन्तु आध्यात्मिक चेतना पूरी तरह ज्योति, शान्ति, बल और आनन्द होती है। अगर व्यक्ति पूरी तरह इनमें रह सके तो ये चीज़ें स्वभावतः और निश्चित रूप से उसकी हो जाती हैं, इस बारे में कोई प्रश्न ही नहीं है। लेकिन अगर व्यक्ति अंशतः भी उसमें रह सके या अपने-आपको सदा उसकी ओर खुला रख सके तो भी वह काफ़ी आध्यात्मिक ज्योति, शान्ति और बल तथा सुख पा सकता है जिनसे वह जीवन के सभी आघातों को पार कर सकता है। व्यक्ति इस आध्यात्मिक चेतना की ओर खुलने से क्या पायेगा यह इस पर निर्भर है कि वह उससे क्या चाहता है। अगर वह शान्ति चाहता है तो शान्ति पायेगा, यदि प्रकाश और ज्ञान चाहता है तो वह महान् प्रकाश में रहेगा, मनुष्य का साधारण मन जिस प्रकार का ज्ञान पा सकता है, उससे ज़्यादा गहरा और सच्चा ज्ञान पायेगा। अगर वह बल और शक्ति चाहता है तो वह आन्तरिक जीवन के लिए आध्यात्मिक शक्ति या यौगिक बल पा लेगा जिससे वह बाहरी कार्य और क्रिया-कलाप पर अधिकार कर सके। अगर वह सुख चाहे तो साधारण मानव-जीवन से जो प्रसन्नता या सुख मिल सकता है उससे कहीं अधिक महान् आनन्द में प्रवेश करेगा।

इस भागवत चेतना की ओर खुलने या उसमें प्रवेश करने के कई उपाय हैं। मेरा वह मार्ग जो मैं औरों को सतत अभ्यास द्वारा दिखाता हूँ, वह है स्वयं अपने अन्दर जाना, अभीप्सा द्वारा भगवान् की ओर खुलना, और एक बार व्यक्ति भगवान् के और उनकी क्रिया के बारे में सचेतन हो जाये तो अपने-आपको पूरी तरह उन्हें अर्पित कर देना। इस आत्मदान का अर्थ होता है, दिव्य चेतना के साथ सतत सम्पर्क या ऐक्य के सिवा अन्य किसी चीज़ के लिए माँग न करना, उसकी शान्ति, शक्ति, ज्योति और

आनन्द के लिए अभीप्सा करना, जीवन और क्रिया में उसका यन्त्र बनने के सिवा अन्य किसी चीज़ की माँग न करना, वह संसार में जो भी काम दे बस उसी का उपकरण बनना। अगर एक बार आप खुल सकें और दिव्य शक्ति, आत्मा की शक्ति को मन, हृदय और शरीर में क्रिया करते हुए अनुभव कर सकें तो बाक़ी रह जाता है उसके प्रति निष्ठावान् रहना, हमेशा उसे पुकारना, वह जब आये तो उसे अपना कार्य करने देना और उस प्रत्येक निम्नतर शक्ति को अस्वीकार करना जो निम्नतर चेतना और निम्नतर प्रकृति की होती है।

मैंने यह सब अपनी स्थिति और अपनी योग-शक्ति को समझाने के लिए लिखा है। मैं सामान्यतः किसी से यह योगाभ्यास करने के लिए नहीं कहता क्योंकि यह केवल उन्हीं लोगों के लिए सम्भव है जिनमें शुरू से इसके लिए पुकार हो या जो इसके लिए ज़ोर की पुकार विकसित कर लेते हैं। दूसरे लोग इसमें अन्त तक नहीं जा सकते। और न मैं प्रायः मार्ग छोड़ कर उन लोगों की सहायता करने जाता हूँ जो केवल बाहरी प्रकृति की एक तरह की अचञ्चलता चाहते हैं, यद्यपि कुछ लोगों की सहायता करने से मैं मना भी नहीं करता। मेरा लक्ष्य है आध्यात्मिक जीवन का एक ऐसा केन्द्र बनाना जो उच्चतर चेतना को नीचे लायेगा और उसे केवल 'मुक्ति' का नहीं, बल्कि धरती पर दिव्य जीवन की शक्ति का साधन बनायेगा। मैंने इसी उद्देश्य से सार्वजनिक जीवन से हाथ खींच लिया है और पॉण्डिचेरी में इस आश्रम की स्थापना की है (किसी ज़्यादा अच्छे शब्द के अभाव में इसे आश्रम की संज्ञा दी गयी है, क्योंकि यह संन्यासियों का नहीं, बल्कि ऐसे लोगों का आश्रम है जो बाक़ी सब कुछ छोड़ कर इस अनुशासन के लिए तैयार होना चाहते हैं)। लेकिन साथ ही सारे भारत में मेरे कुछ संख्या में ऐसे भी भक्त हैं जो अपने परिवार के साथ रहते हैं और दूरी के होते हुए भी मुझसे आध्यात्मिक सहायता पाते हैं।

अभी के लिए मैं आपको यही उत्तर दे सकता हूँ। अब यह निश्चय आपके हाथों में है कि आप जिस चीज़ की खोज कर रही हैं उसका इस पत्र में समझायी गयी बातों के साथ कोई सम्बन्ध है या नहीं।

CWSA खण्ड ३६, पृ. ४४०-४२ फ़रवरी १९३०

श्रीअरविन्द का एक पत्र

(शायद १९१९ में श्रीअरविन्द ने यह पत्र मोतीलाल रॉय को लिखा था। उन दिनों वे अपने हस्ताक्षर 'काली' किया करते थे।)

प्रिय 'म',

अगर तुम साधना करना चाहते हो तो मैं तुम्हारे ऊपर जो सबसे पहली चीज़ आरोपित करूँगा या अपने ऊपर आरोपित करने के लिए ख़ुद तुमसे कहूँगा, वह है, आत्म-संयम। और उसमें सबसे पहली चीज़ है, मैंने तुम्हें जो योग दिया है उसका सख़्ती के साथ अनुसरण करना होगा। अगर तुम ऐसी चीज़ें ले आओ जिनका उसके साथ सम्बन्ध नहीं है, जो उसके लिए बिलकुल विजातीय हैं, उदाहरण के लिए, भूख-हड़ताल या भगवान् की इच्छा के विरुद्ध उग्र विद्रोह, तो तेज़ी से प्रगति करने की आशा करना व्यर्थ है। इसका मतलब यह होगा कि तुम अपनी ही पगडण्डी से जाने का आग्रह करते हो और फिर मुझसे यह आशा करते हो कि मैं तुम्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचा दूँ। सभी कठिनाइयाँ पार की जा सकती हैं, लेकिन एक शर्त है—तुमने जो मार्ग अपनाया है उसके प्रति निष्ठा; कोई भी यह मार्ग अपनाने के लिए बाधित नहीं है। यह कठिन और कष्टकर मार्ग है। यह शूरवीरों का मार्ग है दुर्बलों का नहीं, लेकिन एक बार इसे अपना लो तो फिर इस पर चलना ही होगा, अन्यथा तुम कहीं न पहुँच पाओगे।

याद रखो, समस्त योग का आधार क्या है। यह भक्ति-मार्ग की उग्र भावुकता पर आधारित नहीं है, जो बंगाल के स्वभाव के बहुत अनुकूल है। इसमें एक और तरह की भक्ति है जो समता और आत्म-समर्पण पर आधारित है। स्वेच्छा पर आग्रह नहीं, भगवान् की इच्छा की आज्ञाकारिता इसका मूल मन्त्र है। स्वेच्छा पर इससे बड़ा आग्रह क्या होगा कि अपनी आन्तरिक या बाहरी इच्छा के परिणाम की तुरन्त माँग करो, इसी क्षण, इसी मुहूर्त उसकी पूर्ति की माँग करो, भगवान् के मुहूर्त या भगवान् के क्षण की प्रतीक्षा न करो। तुम पूर्ण उत्सर्ग की बात करते हो, लेकिन अगर किसी प्रकार की उग्रता या अधीरता या विद्रोह की भावना हो तो रास्ते में कठिनाइयाँ आकर रहेंगी; विद्रोह या अधीरता का मतलब सदा यही होता

है कि सत्ता के किसी अंग में कोई ऐसी चीज़ है जिसने अपने-आपको भगवान् के अर्पण नहीं किया है, जो चाहती है कि भगवान् अपना मार्ग छोड़ कर उसका अनुसरण करें। यह भक्तिमार्ग में भले चल जाये पर इस मार्ग में नहीं चल सकता। जब हृदय या प्राण अपूर्णता और अशुद्धि के शिकार होते हैं तब यह विद्रोह या अधीरता वहाँ रहते और वहाँ से आते हैं, लेकिन तब तुम्हारी बुद्धि की इच्छा-शक्ति और श्रद्धा को इनके अनुसार न चल कर इन्हें अस्वीकार करना चाहिये। अगर तुम्हारी इच्छा-शक्ति राज़ी हो जाये, उनका अनुमोदन करे, उनका समर्थन करे तो इसका मतलब यह होता है कि तुम अपने भीतरी शत्रु का साथ दे रहे हो। अगर तुम तेज़ी से प्रगति करना चाहते हो तो पहली शर्त यह है कि तुम ऐसा न करो क्योंकि तुम जब-जब ऐसा करोगे तब-तब शत्रु अधिक बलवान् हो जायेगा और शुद्धि स्थगित हो जायेगी, यह पाठ सीखना कठिन तो है पर है आवश्यक। इसमें देर लग रही है इसके लिए मैं दोष नहीं देता; इसे पूरी तरह सीखने में स्वयं मुझे पूरे बारह वर्ष लगे थे। इस सिद्धान्त को पूरी तरह जान लेने के बाद भी मुझे इस दिशा में अपनी निम्न प्रकृति पर अधिकार करने में पूरे चार वर्ष लग गये थे, लेकिन तुम्हें मेरे अनुभव और मेरी सहायता का लाभ प्राप्त है। अगर तुम सचेतन होकर पूरी तरह मेरी सहायता करो और अपने-आपको कामना नामक शत्रु से अलग रखो तो तुम ज़्यादा जल्दी फल पा सकते हो। गीता के वाक्य *"जाहि कामम् दुरासदम्"* को याद रखो। यह हमारे योग का गुर है।

रही बात हरधन की, तो उसे तो अचञ्चलता, धैर्य और सहन-शक्ति का रास्ता दिखाना चाहिये। क्या वह सोचता है कि यूरोप के देश इस युद्ध को विजय तक पहुँचा सकते थे यदि वे खाइयों की थकान, कष्ट और गड़बड़ों, अभावों, परिणामों के बार-बार स्थगित होने से घबड़ा उठते या यह सोच लेते कि या तो इतने समय में विजय प्राप्त हो जाये या वे लड़ाई से हाथ धो लें। क्या वह आशा करता है कि अपनी निम्न प्रकृति के साथ आन्तरिक युद्ध, हज़ारों जीवनों में बनी आदतों और मानव-वंशानुक्रम के विरुद्ध लड़ाई कम कठोर या थोड़े-से प्रयास में आसानी से जीत ली जायेगी? भगवान् को, किसी मनुष्य या किसी चीज़ को बाधित करने के लिए उपवास करना सच्चा आध्यात्मिक उपाय नहीं है। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है

कि गाँधीजी या कोई और आध्यात्मिक उद्देश्य से भिन्न किसी और चीज़ के लिए इसका उपयोग करें, परन्तु मैं फिर से कहूँगा कि हमारे योग के आध्यात्मिक क्षेत्र में यह मूल से ही विजातीय है।

शुद्धि योग का सबसे कठिन भाग है। यह और सब चीज़ों के लिए पहली शर्त है, और यदि एक बार इसे जीत लिया जाये तो सब कुछ जीत लिया जाता है। बाक़ी सब एक निश्चित आधार पर एक आसान इमारत को बनाने की तरह हो जाता है—उसमें कम या ज़्यादा समय लगता है। उसे शान्ति के साथ स्थिरता से किया जा सकता है। तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे चारों ओर की विरोधी प्रकृति इस शुद्धि को रोकने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा देगी और अगर वह उसे न रोक सके तो भी वह उसमें देर लगाने की कोशिश करेगी।...

—श्रीअरविन्द

डॉ.सी.आर.रेड्डी का भाषण

(श्रीअरविन्द की भारत-वापिसी की १२५ वीं जयन्ति के उपलक्ष्य में हम यहाँ डॉ. सी. आर. रेड्डी के उस भाषण का अधिकांश प्रस्तुत कर रहे हैं जो उन्होंने ११ दिसम्बर, १९४८ को आन्ध्र विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में श्रीअरविन्द को उनकी अनुपस्थिति में सर कट्टमंची रामलिंग रेड्डी राष्ट्रीय पुरस्कार भेंट करने के अवसर पर दिया था।—सं.)

कुलपति महोदय, राष्ट्रीय पुरस्कार की स्थापना का हमारा उद्देश्य विश्वविद्यालय के सदस्यों और समसामयिक भारत के प्रेरक व्यक्तित्वों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना था—उन व्यक्तित्वों के साथ जो इतिहास गढ़ते हैं और जो इतिहास में उन स्थायी प्रकाशों की भाँति रहेंगे जो हमें अन्धकार के घेरों से निकाल कर आगे ले जाते हैं। अगर यही हमारा लक्ष्य था तो आज जब श्रीअरविन्द ने हमारी इस भेंट को कृपापूर्वक स्वीकार कर लिया है तो हम अपनी उपलब्धि के शिखर पर जा पहुँचे हैं। हम उन्हें पुरस्कार नहीं दे रहे, हम उन्हें अर्घ्य दे रहे हैं। मानविकी में उनके महान् उत्कर्ष के कारण हम श्रीअरविन्द को यह श्रद्धाञ्जलि भेंट कर रहे हैं और उनकी स्वीकृति आन्ध्र विश्वविद्यालय के सौभाग्य की पराकाष्ठा और उसके लिए

आशीर्वाद है।

भक्ति की पूर्ण नम्रता के साथ मैं श्रीअरविन्द का अभिवादन इस युग के एकमात्र प्रतिभाशाली व्यक्ति के रूप में करता हूँ। वे राष्ट्र के उद्धारक से भी बढ़ कर हैं। वे मानवता के उन मुक्तिदाताओं में से हैं जो हर युग और हर देश के होते हैं, जो सनातन हैं और अपनी शाश्वत उपस्थिति से, हमारे जाने या अजाने, हमारे जीवन को परिप्लावित करते हैं। हिन्दू संस्कृति की सबसे भव्य और अमूल्य विशेषता है, ऋषि-परम्परा। इसका उत्स गुह्य प्राचीनता में खो गया है, लेकिन इसका प्रवाह कभी नहीं रुका। यह परम्परा अपनी उदात्त यात्रा तब तक जारी रखेगी जब तक कि शाश्वतता में पूरी तरह से घुल-मिल न जाये। वैदिक काल में ऋषि हुए, फिर द्रष्टाओं की एक परम्परा आयी जिसमें मानवता के शुभ्रतम पुष्प और उसकी उपलब्धि, गौतम बुद्ध, उच्चतम स्वर्ग में ऊँचे उठते हैं; और हुए उपनिषद् के ज्ञानी पुरुष, महावीर, नानक, शिवाजी को प्रेरणा देने वाले रामदास, और हमारे काल में आये, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि और वे जिन्हें आज हम अपना राष्ट्रीय पुरस्कार भेंट कर रहे हैं—श्रीअरविन्द।

एक महान् फ़रासीसी ने श्रीअरविन्द का हमारे ऋषियों के अन्तिम ऋषि के रूप में अभिवादन किया है। वास्तव में श्रीअरविन्द सबसे अधिक अर्वाचीन हैं, क्योंकि मृत्यु और अवसाद के इस जगत् में ऋषि हैं, आनन्द की अमर जाति; और समय-समय पर वे उन सितारों की तरह दूर तक कौंधने वाले अन्तर्दर्शनों की तरह स्पन्दित होते हैं जिन सितारों को खगोलशास्त्री खगोलीय क्षेत्रों के 'प्रकाश-स्तम्भ' कहते हैं।

श्रीअरविन्द अपनी प्रतिभा के विस्तार और उसकी परिधि के क्षेत्र में जिस लोहे को छू देते हैं वह सोना बन जाता है। वे कवि, नाटककार, दार्शनिक, समालोचक, गीता, वेद तथा भारत के समस्त पौराणिक आख्यानों तथा उत्कृष्ट विद्याओं के टीकाकार तथा भाष्यकार हैं, इन सब चीज़ों से बढ़ कर वे वह सन्त हैं जिन्होंने वैश्व आत्मा के साथ अपना ऐक्य साधित कर लिया है और जो गहराइयों की थाह लेकर अमूल्य तथा उज्ज्वल ख़ज़ाने सतह पर ले आये हैं। श्रीअरविन्द के ये बहुविध पहलू विचार, मनोवेग तथा लक्ष्य की आन्तरिक एकता को लिये हुए हैं। ये सब अपने विभिन्न पहलुओं में उनके अन्दर स्थित शाश्वतता के प्रकाश को प्रतिबिम्बित करते हैं।

... शायद मैं क्षम्य मिथ्याभिमान और श्रीअरविन्द के प्रतिबिम्बित प्रकाश में चमकने की अपनी तुच्छ लालसा के रूप में पहले के दिनों का स्मरण करते हुए यह कह सकता हूँ कि हम दोनों केम्ब्रिज के ही हैं, वे मुझसे बहुत 'सीनियर' थे और यह भी कि उनके बाद मैं बड़ौदा कॉलेज का वाइस प्रिंसिपल बना। उनके पूर्व जीवन में मुझे उनको जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, भले वह सीमित परिचय था। हम दोनों के कई समान मित्र थे। बड़ौदा कॉलेज के प्रिंसिपल श्री जे.बी.क्लार्क की वह उक्ति तो बहुत प्रसिद्ध है ही कि "यदि जोन ऑफ़ आर्क स्वर्गिक आवाज़ें सुनती थीं तो सम्भवतः अरविन्द स्वर्गिक अन्तर्दर्शन देखते हैं।" क्लार्क जड़वादियों के जड़वादी थे। मैं कभी यह नहीं समझ पाया कि उस सांसारिक लेकिन प्रसन्नचित्त व्यक्ति ने श्रीअरविन्द के उस सत्य की झलक कैसे पा ली जो उस समय प्रच्छन्न था। लेकिन क्या, बिजली की एक क्षणिक कौंध काले अन्धकारमय बादल से नहीं फूट पड़ती? अलीपुर जेल, जहाँ उन्हें एक वर्ष तक एकान्त और ध्यान के लिए बन्दी रखा गया था, उनके जीवन के एक मोड़ को दर्शाता है। अंग्रेज़ सरकार ने उनके शरीर को बाँध कर उनकी अन्तरात्मा को मुक्त कर दिया। ऐसा करने का सरकार का इरादा न था, लेकिन बहुधा हमारे सबसे अच्छे काम वही होते हैं जिन्हें हम अजाने में कर बैठते हैं। शरीर से अधीन, लेकिन अन्तरात्मा से मुक्त—यही उनके कारावास का विरोधाभास था। वहीं पर उन्होंने अपनी प्रथम गुह्य अनुभूतियाँ और उन शाश्वत सत्यों का अन्तर्दर्शन पाया जो हमारे स्फोटवाद[१] के अनुसार हमेशा उपस्थित रहते हैं और मानों उस आकाश में विचरते हैं जो विश्व को घेरे हुए है। १९१०, आत्मोपलब्धि के प्रारम्भ में उन्होंने पॉण्डिचेरी में आकर एकान्तवास ले लिया। क्या कोई ऋषि इस तरह अपने कार्य से निवृत्त हो सकता है, वह अपने शरीर से पीछे हट कर एकान्तवास ग्रहण कर सकता है? लेकिन बहुधा शरीर का यूँ पीछे हटना स्वर्ग की ऊँचाइयों तक उठने और सम्पूर्ण भूमण्डल पर छा जाने के लिए अन्तरात्मा की प्रारम्भिक तैयारी होती है। उनकी भौतिक सत्ता पॉण्डिचेरी में है, लेकिन क्या हम उनके प्रभाव को देश और काल की सीमा में बाँध सकते हैं? उनका आश्रम संसार के

[१] कहा जाता है कि सृष्टि बनने के पहले एक विस्फोट हुआ, फिर ओम् शब्द सुनायी दिया। उसके बाद ही सृजन हुआ। इसे स्फोटवाद कहते हैं।

प्रकाश-स्तम्भों में एक है जो जाति या राष्ट्र के किसी भेद-भाव के बिना श्रद्धालुओं और गम्भीर चित्तवाले मनुष्यों को अपनी ओर आकर्षित करता है। लौकिक दृष्टि से वे छियत्तर वर्ष के हैं, लेकिन सचमुच न समय उनका स्पर्श कर सकता है, न पृथ्वी और उसकी अशुद्धियाँ ही। उनकी अन्तरात्मा एक ऐसा नक्षत्र है जो सबसे पृथक् रहता है।

श्रीअरविन्द में साहित्य, तत्त्वमीमांसा और सिद्धि की साधना पारस्परिक आधार और सामञ्जस्य में पृथ्वी से स्वर्ग तक एक घुमावदार आरोहण है। श्री के.आर.श्रीनिवास आयंगर के भव्य संक्षिप्त विवरण के अनुसार, "द्रष्टा ने सत्य के साथ आँखें चार कर ली हैं। कवि ने समाधि के महिमामय क्षेत्रों का स्तवन किया, दार्शनिक ने अन्तर्दर्शन को तर्क के पदों में ढाला, योगी ने चेतना के वाञ्छित परिवर्तन पाने के लिए एक प्रक्रिया को सूत्रबद्ध किया तथा बहुविध तकनीक का निर्माण किया। समाजशास्त्री ने कल के जगत् की व्यवस्था के सम्बन्ध में अर्थपूर्ण संकेत दिये और नयी जान फूँकने वाले समालोचक ने भावी कविता की लयों का अनुभव किया और इसका वर्णन किया है कि किस तरह नया कवि मूलभूत आध्यात्मिकता के पंखों पर उड़ान भरेगा और आत्मा की अनिवार्य लयों को मुखरित करेगा।"...

अपने बहुत से समालोचनात्मक लेखों, वेद और गीता की व्याख्याओं में उन्होंने बृहत् अन्वेषण के साथ-साथ कवि की अन्तःप्रेरणा, दार्शनिक के विचार और ऋषि के अन्तर्दर्शन को भी जोड़ा है। उनका एक वाक्य संयुक्त राष्ट्र-संघ को प्रेरणा देगा और उसे आध्यात्मिक आधार और आशा देगा: "क्रम-विकास विभिन्नता के द्वारा सरल से जटिल ऐक्य की ओर बढ़ता है। मानवजाति एकता की ओर बढ़ रही है और एक दिन निश्चय ही उसे पाकर रहेगी।" कितना सुन्दर वाक्यांश है "जटिल ऐक्य", और साथ ही इसमें आशा और सुख की दूर तक फैलने वाली एक किरण है, यद्यपि आज हम सब जटिलताओं से अभिभूत हैं और ऐसा नहीं लगता कि अणु बम के विध्वंसात्मक आतंक के सिवाय मानव एकता की ओर बढ़ रहा है।

सामञ्जस्यपूर्ण विविधता में, मानव एकता के धीमे लेकिन निश्चित क्रम-विकास पर श्रीअरविन्द की श्रद्धा इतनी मज़बूत है कि उसे कठोर व दुराग्रही तथ्यों के सामने न तो बौना बनाया जा सकता है न वे तथ्य उसे पराजित ही कर सकते हैं। यह ऐसी श्रद्धा है जो तथ्यों को जीत कर उसे

हृदय की इच्छा के सादृश्य में फिर से गढ़ने के प्रयत्न में है। उनकी गणना पैगम्बरों की उस श्रेणी में की जाती है जो वर्तमान को संक्रमणकालीन क्षण के सिवाय और कुछ नहीं मानते और जिसे मनुष्य की आशावादिता पर अभिभूत नहीं होने देना चाहिये।

पत्रलेखक या दार्शनिक रूप में नहीं, बल्कि उस योगी के रूप में वे अपनी उस अद्वितीय उत्कृष्टता में जा पहुँचते हैं जिसने परम प्रकाश को हस्तगत कर लिया है और जो उसे परमानन्द से भरी हुई प्रचुरता में प्रतिबिम्बित करता है। वे 'दिव्य जीवन' के पैगम्बर हैं। उनके लिए यह मात्र विचार नहीं, बल्कि अनुभूति है; ऐसी अनुभूति जो दूसरों के साथ भी बाँटी जा सकती है। जो आध्यात्मिक खोज उन्हें उनकी महान् विजय की ओर ले गयी, उसकी प्रकृति का वर्णन वे श्री चित्तरंजन दास—जिन्होंने अलीपुर बम के केस में उनकी सफ़ाई दी थी—को लिखे हुए पत्र में यूँ करते हैं—"मैं अधिकाधिक मूर्त रूप में यह देख रहा हूँ कि जब तक मनुष्य अपने-आपको एक नयी बुनियाद पर नहीं उठा लेता, तब तक वह इस निरर्थक चक्कर की लीक से बाहर नहीं निकल सकता जिस पर मानवजाति निरन्तर घूम रही है। प्रश्न है कि इस महान् रूपान्तर के लिए, हम वर्तमान साधनों—बुद्धि, प्राण, मन और शरीर को किस तरह सच्ची और पूर्ण वाहिनियाँ बना सकते हैं? यही वह समस्या है जिसे मैं अपनी निजी अनुभूति में क्रियान्वित करने की कोशिश करता रहा हूँ और अब मैं इसके रहस्य का एक निश्चित आधार, विस्तृत ज्ञान पा चुका हूँ और मैंने इस पर कुछ प्रभुत्व भी पा लिया है।"

अपने सिद्धान्तों को वे अपनी पुस्तक 'दिव्य जीवन' में प्रस्तुत करते हैं जो मानव विचार और अभीप्सा के इतिहास में मील का एक पत्थर है। सर फ़्रांसिस यंगहस्बैंड ने उसका यह कह कर जय-जयकार किया कि यह मेरी पीढ़ी में प्रकाशित महानतम पुस्तक है। पाइथागोरस ने स्वर्ग के संगीत की चर्चा की। यह रहा मानवता का संगीत, ऐसा संगीत जो अब करुण नहीं रहा और स्वर्ग की ओर आरोहण कर रहा है। श्रीअरविन्द का यह विश्वास है कि हम सत्ता की अधिक ऊँची अवस्था में उठेंगे और हमारा क्रम-विकास हमें अपने वर्तमान जीवन की सीमाओं और दुःखों को जीत लेने में सहायता देगा और हमें एक ऐसे जगत् की ओर ले जायेगा जिसका मार्ग निरन्तर प्रगतिशील और पवित्र है—सामञ्जस्य और आनन्द

का जीवन। क्रम-विकास की यही यथार्थ प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया अभी यहाँ स्थिरता से कार्य कर रही है। अपने-आपको पूरी तरह से चरितार्थ किये बिना वह रुकेगी नहीं। समय आने पर मनुष्य नया जीवन पा लेगा जिसमें न दुःख-दर्द और कष्टों का कोई अस्तित्व होगा, न मृत्यु का कोई दंश।

श्रीअरविन्द इस आविर्भाव की निश्चिति द्वारा हमारी निराशा को दूर कर देते हैं। मर्त्य-जगत् में, वे अमर, हमें अमरता का विश्वास दिलाते हैं। हे श्रीअरविन्द, जगत् को आपकी आवश्यकता है, इसी कारण आज भी आप हमारे साथ हैं।

कुलपति महोदय, अब मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि कृपया यह राष्ट्रीय पुरस्कार (यह मेरा अनर्जित परम सौभाग्य है कि इसके साथ मेरा नाम भी जुड़ा है) श्रीअरविन्द को, उनकी अनुपस्थिति में, भेंट करें। यद्यपि मुझे इस बात पर बहुत शंका है कि "अनुपस्थिति में" शब्द का यहाँ उचित प्रयोग है या नहीं, क्योंकि यद्यपि श्रीअरविन्द कठोर एकान्तवास का जीवन बिता रहे हैं जिसमें वे विरले ही लोगों से मिलते हैं या लोग उनसे मिल पाते हैं, फिर भी दुनिया के कोने-कोने से हज़ारों की तादाद में लोग यह अनुभव करते हैं कि उनकी उपस्थिति सच्ची और ठोस है। वे इस मिट्टी से नहीं बने और न इस मिट्टी के साथ एक होते हैं, बल्कि आकाश की तरह हम सब पर छाये रहते हैं। अतः कुलपति महोदय, विश्वविद्यालय को सम्मान दीजिये और अगर आप मेरा यह कहना गुस्ताख़ी नहीं मानते तो श्रीअरविन्द को सर कट्टमंची रामलिंग रेड्डी राष्ट्रीय पुरस्कार भेंट में देकर अपने-आपको सम्मानित कीजिये।

—'पुरोधा' अगस्त १९८४ से

मेरे योग का उद्देश्य है, भागवत सत्य तथा उसकी गतिशील निश्चितियों के प्रकाश, शक्ति तथा आनन्द को जीवन में नीचे उतार कर उसे रूपान्तरित करना। यह योग जगत् को त्याग कर तपस्या या संन्यास नहीं, बल्कि दिव्य जीवन का योग है।

... हमारा लक्ष्य व्यक्ति के लिए भागवत उपलब्धि की व्यक्तिगत प्राप्ति नहीं है, बल्कि यहाँ, पार्थिव चेतना के लाभान्वयन के लिए कोई वस्तु है, केवल वैश्वातीत नहीं, वैश्व प्राप्ति है। —*श्रीअरविन्द*

पॉण्डिचेरी में

जेल से निकलने के बाद श्रीअरविन्द ने देखा कि देश की हवा बदल गयी है। वे राजनीति को जो दिशा देना चाहते थे, लोग उसके लिए तैयार न थे। "वन्दे मातरम्" बहुत छोटा परन्तु ओजस्वी जीवन समाप्त करके चिर-निद्रा में सो गया था। देश की राजनीतिक अवस्था बहुत अच्छी न थी। उन्होंने फिर से जनता को नया सन्देश देने के लिए बंगला में "धर्म" और अंग्रेज़ी में "कर्मयोगिन्" नामक पत्र निकालने शुरू किये। अभी वे अपना कार्यक्रम बना ही रहे थे कि ऊपर से आदेश मिला "चन्दननगर चले जाओ" और वे जैसे थे वैसे ही चन्दननगर के लिए चल पड़े।

यहाँ एक मज़ेदार साम्य है।

कहते हैं जब भगवान् कृष्ण का जन्म हुआ तो वसुदेव को आदेश मिला कि उन्हें वृन्दावन ले जायें। वे उस समय कारागार में बन्द थे पर हठात् बेड़ियाँ कट गयीं, द्वार खुल गये और कारागार के सन्तरियों को नींद आ गयी, वसुदेव नन्हें बालक को लिये हुए निरापद रूप से निकल गये।

श्रीअरविन्द को आदेश मिला, "चन्दननगर जाओ।" उनके निवास-स्थान पर हमेशा खुफ़िया पुलिस जड़ी रहती थी। वे जहाँ कहीं जाते वहीं अंग्रेज़ सरकार के सर्वव्यापक और सर्वज्ञ गुप्तचर पहले से ही मौजूद रहते। परन्तु इस बार न जाने क्या हुआ, कैसे हुआ, मानों सभी गुप्तचरों को एक साथ साँप सूँघ गया, उनके मार्ग में कहीं किसी ने बाधा न दी और वे घाट से नौका में बैठ कर चन्दननगर जा पहुँचे। अंग्रेज़ सरकार श्रीअरविन्द पर राजद्रोह का मुक़द्दमा चलाने की तैयारी कर रही थी, लेकिन पंछी पिंजरे से उड़ चुका था।

चन्दननगर में श्रीअरविन्द मोतीलाल रॉय के यहाँ गये और उन्होंने उन्हें कई मकानों में ठहराया ताकि लोगों को उनके ठौर-ठिकाने का पता न लग जाये। यहाँ वे लोगों से मिलते-जुलते न थे। अधिक समय ध्यान में ही बीतता था। यहीं पर श्रीअरविन्द ने पहली बार ध्यान में उन तीन देवियों के दर्शन किये जिनके बारे में वेदाध्ययन के बाद उन्हें पता लगा कि वे वैदिक इड़ा, सरस्वती और मही (भारती) थीं। यहाँ डेढ़ महीना रहने के बाद उन्हें फिर से आदेश मिला "पॉण्डिचेरी जाओ" और वे उसके लिए

तैयार हो गये। पहले उनके एक युवा साथी सुरेश चन्द्र चक्रवर्ती (मणि) को भेजा गया कि वहाँ जाकर रहने-सहने की व्यवस्था करे। मणि ३१ मार्च १९१० को पॉण्डिचेरी आया और उसने श्रीनिवासाचारी आदि स्थानीय लोगों को यह बतलाया कि श्रीअरविन्द ४ अप्रैल को जहाज़ से आ रहे हैं। लेकिन कोई युवा मणि की बात सुनने के लिए तैयार न था। उन्हें शंका थी कि मणि कहीं अंग्रेज़ों का जासूस न हो? वह आग्रह करता रहा कि ४ तारीख़ तक किसी मकान की व्यवस्था कर दें। वे इसके लिए भी तैयार न हुए। उन्होंने कहा, उनके आने पर देखा जायेगा। लेकिन अगर वे आये तो उनका सार्वजनिक स्वागत किया जायेगा। बड़ी मुश्किल से मणि उनको समझा पाया कि श्रीअरविन्द गुप्त रूप से आ रहे हैं इसलिए सार्वजनिक स्वागत ठीक न होगा। वे लोग बड़ी कठिनाई से माने।

आख़िर ४ अप्रैल का दिन आया और श्रीअरविन्द शाम के ४ बजे पॉण्डिचेरी में आ पहुँचे। श्रीनिवासाचारी और तमिल महाकवि श्री सुब्रह्मण्यम् भारती उनका स्वागत करने के लिए उपस्थित थे।

श्रीअरविन्द किसी से मिलते-जुलते न थे। उन्होंने अपने साथ रहने वाले मणि और विजय से कह रखा था कि जब तक कोई विशेष काम न हो, किसी को उनके पास न आने दें। इन्हीं दिनों उन्होंने तेईस दिन का उपवास किया। उसके बारे में उन्होंने कहा था:

"जब मैंने शंकर चेट्टी के मकान में तेईस दिन का उपवास किया था तो मैं अपने नियमानुसार रोज़ आठ घण्टे टहलता था। मेरा साधना चलती रही, मानसिक कार्य चलता रहा और मैंने देखा कि तेईस दिन बाद भी मैं दुर्बल नहीं हुआ था, लेकिन शरीर का मांस कम होने लगा और मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं सूझा जिससे शरीर के घटते हुए मांस की कमी पूरी की जा सके। जब मैंने उपवास तोड़ा तो मैंने उपवास के नियमों का पालन नहीं किया। मैंने उतनी ही मात्रा खानी शुरू की जितनी उपवास के पहले खाया करता था—इससे पहले एक बार जेल में भी मैंने उपवास किया था, लेकिन वह केवल दस दिन के लिए था और तब मैं तीन रातों में केवल एक बार सोता था। मेरा भार तो दस पाउण्ड कम हो गया, लेकिन मैंने देखा कि दस दिन के उपवास ने मुझे ज़्यादा बलवान् बना दिया था। मैं इतना भार उठा सकता था जितना पहले कभी न उठा पाता।"

किसी ने उनसे पूछा कि यह कैसे सम्भव हुआ तो उन्होंने बतलाया कि इस स्थिति में मनुष्य भौतिक तत्त्वों से शक्ति ग्रहण करने की जगह प्राणिक स्तर से शक्ति पाता है।

श्रीअरविन्द ने इंग्लैण्ड में बहुत कठोर जीवन बिताया था। बहुत बार रोटी और चाय पर ही गुज़ारा करना पड़ता था। पॉण्डिचेरी का प्रारम्भिक जीवन भी अगर उससे इक्कीस नहीं तो उन्नीस भी न था। विजय या मणि सवेरे चाय तैयार कर देते थे। दोपहर के भोजन में चावल, तरकारी और रसम या सांभर हुआ करता था। रात के समय कभी-कभी श्रीअरविन्द को खीर मिल जाती थी। श्रीअरविन्द की उन दिनों की कुछ चिट्ठियों से पता लगता है कि कभी-कभी उनके पास कुल चार आने की रोकड़ हुआ करती थी।

१९११ में श्रीअरविन्द के साथी बारी-बारी से खाना पकाया करते थे, बाक़ी लोग स्नान करके रसोईघर में ही खाने की प्रतीक्षा किया करते थे। सबके अन्त में श्रीअरविन्द के स्नान की बारी आती थी। सबके लिए एक ही अँगोछा था और सबके अन्त में श्रीअरविन्द उसका उपयोग करते थे। घर में दो लैम्प थे, एक मोमबत्ती का दूसरा मिट्टी के तेल का। रात के खाने के समय श्रीअरविन्द का मोमबत्ती वाला लैम्प रसोईघर को आलोकित किया करता था।

इन्हीं दिनों श्रीअरविन्द अपने साथी लड़कों को लैटिन, ग्रीक और फ़्रेंच सिखाया करते थे और मज़े की बात यह है कि वे प्रारम्भिक पुस्तकों से नहीं, उच्चतर साहित्य से श्रीगणेश करवाते थे।

कहते हैं, मैं तो कम्बल छोड़ रहा हूँ पर कम्बल मुझे नहीं छोड़ता। श्रीअरविन्द अंग्रेज़ी राज को छोड़ कर चले आये पर अंग्रेज़ी राज ने उन्हें नहीं छोड़ा। उनकी ख़ुफ़िया पुलिस १९३६ तक श्रीअरविन्द और उनके आश्रम में आने-जाने वालों के पीछे लगी रहती थी। सन् ३६ में सर अकबर हैदरी ने उस समय के मद्रास के मुख्य मन्त्री श्री राजगोपालाचार्य से कह कर उसे हटवाया।

हाँ, तो बात १९१२ की है। अंग्रेज़ों के इशारे पर फ़्रेंच पुलिस से शिकायत की गयी कि श्रीअरविन्द के मित्र वी.वी.एस.अय्यर, सुब्रह्मण्यम् भारती आदि कुछ षड्यन्त्र कर रहे हैं, उनके घरों की तलाशी ली जाये। लेकिन, *जाको*

राखे साइयाँ, मेटि सके कब कोय। वी.वी.एस. की नौकरानी कुएँ में से पानी भरने गयी तो डोल में से एक डब्बा निकला। मित्रों का माथा ठनका, उन्होंने श्रीअरविन्द को सूचना दी और उनकी सलाह पर फ़्रेंच पुलिस को बुला लिया। पुलिस ने डब्बा खोला तो उसमें से अंग्रेज़ों के विरुद्ध पैम्फ़लेट, काली की मूर्ति और कुछ ऐसे कागज़ निकले जिनसे यह सन्देह हो कि ये लोग विदेशों में रहने वाले भारतीय क्रान्तिकारियों, श्यामजी कृष्ण वर्मा, मादाम कामा आदि से पत्र-व्यवहार कर रहे थे। भण्डा असमय फूट गया और अंग्रेज़ सरकार अपने उद्देश्य में सफल न हो पायी।

ख़ैर, तलाशी लेने वाले फ़्रेंच अफ़सर अपने कुछ साथियों को लेकर श्रीअरविन्द के यहाँ भी पधारे। यहाँ छिपाने के लिए था ही क्या, उन्होंने कह दिया, अपने-आप घर की छान-बीन कर लो, जो देखना चाहो देखो। यहाँ फ़र्नीचर और साज-सामान के नाम पर कुछ बक्से थे, अफ़सर ने यह खोला, वह खोला तो ग्रीक, लैटिन, फ़्रेंच आदि भाषाओं का साहित्य पाया। बस वह प्रभावित हो गया। जो आदमी इतनी यूरोपीय भाषाएँ जानता हो वह षड्यन्त्रकारी कैसे हो सकता है। उसने हाथ मिलाया और श्रीअरविन्द को अपने यहाँ आने का निमन्त्रण देकर चला गया।

१९१२ में अंग्रेज़ सरकार ने फ़्रेंच सरकार पर बहुत ज़ोर डाला कि श्रीअरविन्द और उन जैसे अन्य क्रान्तिकारियों को पॉण्डिचेरी से देशनिकाला दे दिया जाये। ख़बर आयी कि फ़्रेंच सरकार मान गयी है। भारती आदि सभी मित्र श्रीअरविन्द के यहाँ इकट्ठे हुए। भारती बहुत उत्तेजित थे और जीबूती, ट्रिपोली आदि जाने की सोच रहे थे। उन्होंने श्रीअरविन्द से पूछा कि अगर फ़्रेंच सरकार आपकी ढाल बनने से इन्कार करे तो आप क्या करेंगे, कहाँ जायेंगे? श्रीअरविन्द कुछ देर के लिए चुप रहे फिर बड़ी दृढ़ता के साथ बोले: "मैं जानता हूँ मेरा बाल बाँका न होगा, मैं पॉण्डिचेरी से एक इंच भी न हटूँगा।" इसके बाद औरों ने भी अपना विचार छोड़ दिया।

इन्हीं दिनों की एक मज़ेदार घटना है। श्रीअरविन्द के यहाँ एक सज्जन आये। उनका रसोइया वीरेन्द्र रॉय श्रीअरविन्द के घर की रसोई का मैनेजर बन बैठा और सबके साथ हिल-मिल गया। एक दिन अचानक लोगों ने देखा कि वह अपना सिर मुँडा आया है। यह देख कर मणि को बड़ा मज़ा आया और उसने भी वीरेन्द्र के विरोध के बावजूद अपना सिर मुँडा लिया।

यूँ तो यह एक संयोग था पर इसका परिणाम कल्पनातीत निकला। वीरेन्द्र बहुत उदास हो गया और एक दिन श्रीअरविन्द के सामने आकर फूट पड़ा। उसने बताया कि वह खुफ़िया पुलिस का सदस्य था और खुलना से इस तरह आया था कि उस पर कोई सन्देह न कर सके। अब उसे यहाँ रहते सात-आठ महीने हो चुके, उसे घर की याद आ रही थी। उसका स्थान लेने के लिए कोई और आने वाला था और उसे यह पहचान बतलायी गयी थी कि घुटी टाँट के बंगाली से मिले। वीरेन्द्र को विश्वास था कि मणि को उसके रहस्य का पता चल गया था और इसीलिए, नये खुफ़िया पुलिस को बहकाने के लिए उसने अपनी टाँट घुटायी थी।

—'लाल कमल' पुस्तक से

संस्मरण और क़िस्से

बड़ौदा में श्रीअरविन्द के एक विद्यार्थी एडवोकेट आर.एन.पाटकर ने उनके जीवन के बारे में लिखा है, "श्रीअरविन्द बहुत ही सादगी से रहते थे। जब प्रशासकीय काम के लिए जाते तो सिर पर एक सफ़ेद पगड़ी बाँध लेते, गले में टाई होती और कोट-पतलून पहन लेते। सरकारी काम के सिवा किसी और काम के लिए जाते तो अधिकतर भारतीय वेशभूषा में ही रहते। घर पर प्रायः धोती-कुरते का ही चलन रहता। सरकारी अफ़सरों की तरह उनके यहाँ ठाठ-बाट के कपड़े न थे। वे न तो टीम-टाम करते थे न घर की सजावट में रस लेते थे। जब जिस चीज़ की ज़रूरत होती मित्रों द्वारा बाज़ार से मँगवा लेते थे। मकान के पास चाहे जितना शोर मचता रहे, उनकी नींद में खलल न पड़ता था। एक बार मैंने उनसे पूछा, 'आप इतने ऊबड़-खाबड़ और कठोर बिस्तर का उपयोग क्यों करते हैं?' उन्होंने अपने स्वाभाविक स्मित के साथ उत्तर दिया, 'हमारे शास्त्र कहते हैं कि ब्रह्मचारी को नरम बिछौने का उपयोग न करना चाहिये'।

पाटकर एक और मज़ेदार बात कहते हैं—श्रीअरविन्द को धन के लिए ममता न थी। उनका तीन महीने का वेतन एक साथ एक थैली में मिला करता था। वे पूरी थैली एक तश्तरी में रख कर मेज़ पर रख देते थे। वहाँ पड़े रुपयों का हिसाब भी न रखते थे। एक दिन मैंने पूछ लिया, 'आप पैसे

इस तरह क्यों रखते हैं?' उन्होंने हँस कर कहा, 'यह इस बात का प्रमाण है कि मेरे आस-पास के लोग प्रामाणिक और ईमानदार हैं।' मैंने कहा, 'लेकिन आप हिसाब कहाँ रखते हैं जो इस बात का प्रमाण मिल सके?' मेरा प्रश्न सुन कर श्रीअरविन्द गम्भीर हो गये और थोड़ी देर चुप रह कर बोले, 'मेरे लिए स्वयं भगवान् हिसाब रखते हैं। भगवान् मुझे कभी आर्थिक कठिनाई में नहीं डालते फिर मैं क्यों चिन्ता करूँ?' यह उत्तर सुन कर मेरी बोलती बन्द हो गयी। वे कहते हैं, "मुझे इंटर में श्रीअरविन्द का विद्यार्थी होने का सौभाग्य मिला था। उनकी पढ़ाने की शैली एकदम निराली थी। कक्षा में हों या कक्षा के बाहर, उनके भाषण सुनने के लिए हम सबमें ललक होती थी। उनके भाषण हमेशा हृदय को छूते थे। वे एकदम सीधे खड़े होकर, ज़रा भी हिले-डुले बिना, मुखमुद्रा बदले बिना बोलते थे। श्रोता भी एकदम मन्त्रमुग्ध होकर सुनते थे।

"एक बार मैंने उनसे अपनी अंग्रेज़ी सुधारने की तरक़ीब पूछी। मैंने उनसे पूछा, 'क्या मेकाले का अध्ययन इसमें सहायक होगा!' श्रीअरविन्द ने मुस्कुरा कर कहा, 'किसी के ग़ुलाम न बनो, तुम स्वयं अपने स्वामी बनो। मेकाले या किसी और लेखक का अध्ययन करने से तुम कभी उस जैसे लेखक न बन पाओगे, शायद उसकी हास्यास्पद नक़ल बन जाओ। तुम किसी भी बड़े लेखक की कृतियों का अध्ययन करो पर उससे मौलिक लेखक न बन पाओगे। तुम्हें स्वतन्त्र विचार करना सीख कर अपना निर्णय करना सीखना होगा। अपनी ही शैली बनानी होगी।'

"श्रीअरविन्द जिस दिन बड़ौदा छोड़ रहे थे उस दिन उन्होंने शाम को मुझे अपने घर बुलाया और अपने कमरे में ले जाकर बिठाया और बड़े प्रेम से बोले, 'हमारे बिछुड़ने का समय आ गया है, आत्मा से नहीं, शरीर से। अब मुझे बड़ौदा छोड़ना होगा। ऐसा लगता है कि सर्वोपरि सत्ता को कहीं और मेरी ज़रूरत है। मुझे अपने धर्मपथ पर चलना ही होगा।"

जब श्रीअरविन्द बड़ौदा में प्रोफ़ेसर थे उन्हीं दिनों कॉलेज में एक कट्टर नास्तिक थे, उनका नाम था मिस्टर क्लार्क। उन्होंने किसी से कहा, "तुमने अरविन्द घोष की आँखें देखीं? उनमें एक रहस्यमय आग है, एक ज्योति है। ये आँखें उधर अनन्त में देखती हैं। अगर जोन ऑफ़ आर्क स्वर्गिक वाणियाँ सुना करती थी तो सम्भवतः अरविन्द स्वर्गिक अन्तर्दर्शन करते हैं।"

कन्हैयालाल मुंशी भारत के जाने माने नेता, महान् लेखक और भारतीय विद्याभवन नामक संस्था के संस्थापक थे। अपने कॉलेज-जीवन में वे श्रीअरविन्द के विद्यार्थी रहे थे। वे अपने संस्मरणों में कहते हैं कि श्रीअरविन्द की विद्या पर हमलोग फूले न समाते थे। महाराजा सयाजी राव बीच-बीच में उन्हें कॉलेज से छुट्टी दिलवा कर अपने व्यक्तिगत काम या राज-काज के लिए बुला लेते थे। प्रो.अरविन्द को लोकप्रियता की ज़रा भी परवाह न थी, फिर भी विद्यार्थियों में सबसे बढ़ कर लोकप्रिय थे। उनके लिए हमलोगों का अहोभाव, बल्कि यूँ कहें, पूज्य भाव शब्दों में नहीं रखा जा सकता।

वे कहते हैं—मुझे उन्हीं दिनों का एक प्रसंग याद आता है। मैंने पूछा, 'अपने अन्दर राष्ट्रीयता किस तरह विकसित की जाये?' उन्होंने दीवार पर टँगे भारत के नक़्शे की ओर इशारा करके कहा, "इस नक़्शे को देखो और इसमें भारतमाता की आकृति को देखना सीखो। इसका शरीर वन-पर्वत और नदी-नीर से बना है। यहाँ के देशवासी इसके कोष हैं और इन्हीं से इसकी मांस-पेशियाँ बनी हैं। हमारा साहित्य इसी माता की स्मृति और इसकी वाणी है। हमारी संस्कृति और चेतना इसी की आत्मा है। भारत को सजीव माता मान कर उसके दर्शन करो और उसकी भक्ति करो।"

इसी तरह बड़ौदा कॉलेज के एक और विद्यार्थी चन्दवाणी अपने प्रो. अरविन्द घोष के बारे में कहते हैं, "श्रीअरविन्द बहुत ही शान्त, बल्कि यूँ कहें, शर्मीले स्वभाव के थे। हम सब विद्यार्थी उन्हें बहुत अधिक मान देते थे। उन दिनों भी हमें लगता था कि वे किसी महान् सिद्धि की तैयारी में लगे हैं। कक्षा में प्रवेश करते ही मेज़ के पास की कुरसी पर बैठ जाते और हाथ मेज़ पर रख लेते थे। कक्षा में भाषण देते समय उनकी आँखें नीचे की ओर रहतीं, मानों ध्यान-मग्न हों। हमलोगों को तो उनके भाषण बहुत ही अच्छे लगते थे। हाँ, कुछ लोगों को उनके भाषण भारी लगते थे। पढ़ाते समय श्रीअरविन्द का उद्देश्य बच्चों को परीक्षा में पास करवाना न होता था बल्कि विषय की सर्वांगीण समीक्षा करना होता था।

"व्यक्तिगत रूप से मैं श्रीअरविन्द के पढ़ाने से बहुत ही सन्तुष्ट रहता था और जहाँ कहीं जो कुछ समझ में न आता उसके बारे में उनके घर जाकर पूछ लेता था। उन दिनों परीक्षा में अच्छे अंक लेना बहुत आसान न होता

था, परन्तु मुझे इंटर के पहले दर्जे में पहला स्थान मिला और मुझे एलफ़िंस्टन कॉलेज की छात्रवृत्ति मिल गयी। जब मैं बम्बई में था तो श्रीअरविन्द वहाँ राजनीतिक काम से आये थे। मैं उनसे मिलने गया और उन्हें अपने सिंधी मित्रों से मिलने के लिए अपने कमरे पर निमन्त्रण दिया। जब सब साथी इकट्ठे थे तो मैं श्रीअरविन्द के बारे में कुछ बोलने के लिए खड़ा हुआ तो उन्होंने मुझे बिठा दिया। जब वे देवता-मूर्ति बोलने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने कहा, 'हम सब एक ही माता की सन्तान हैं, उसकी सेवा करना हमारा कर्तव्य है।' "वाणी की तो कौन कहे, श्रीअरविन्द का मौन भी हमारे लिए प्रेरणा-रूप होता था। ये हमारे लिए राष्ट्रीय आदर्शों और प्रवृत्तियों के एकमात्र प्रेरणादाता बन गये। उनकी ही वजह से हमारे अन्दर देशप्रेम की ज्वाला भभकती थी। उनके दिये हुए दान को माप सकने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है।"

श्रीअरविन्द के बड़ौदा-काल की दो-एक घटनाएँ चारु दत्त ने सुनायी थीं—एक बार बहुत ज़ोर से वर्षा हो रही थी। हमलोग समय काटने के लिए राइफ़ल से लक्ष्य-वेध कर रहे थे। मेरी पत्नी ने कहा, 'चलो, श्रीअरविन्द से भी लक्ष्य-वेध करने के लिए कहो।' लक्ष्य था, बारह फ़ुट की दूरी पर टँगी हुई दिया सलाई का काला सिरा। पहले तो श्रीअरविन्द ने मना किया। उन्होंने कभी राइफ़ल छुई न थी, फिर हमारे आग्रह करने पर मान गये। हमने उन्हें राइफ़ल पकड़ना और घोड़ा दबाना सिखाया। उन्होंने घोड़ा दबाया और पहली बार में ही तीली का सिर काट दिया। हमलोगों ने फिर आग्रह किया और तीन-चार बार उनसे निशाना लगवाया, हर बार वही पूर्ण सफलता! मेरे मुँह से निकला, "अगर ऐसा आदमी सिद्ध न होगा तो कौन होगा? क्या एकाग्रता है!"

अब दूसरी घटना—बड़ौदा में रहते हुए श्रीअरविन्द को पढ़ने का बहुत शौक था। कहते हैं कि जब कभी मित्र लोग उनसे मिलने आते तो हमेशा उनके हाथों में कोई-न-कोई पुस्तक दिखायी देती थी। पुस्तकें पढ़ते हुए उन्हें खाने-पीने का भी होश न रहता था। उन्हें विशेष रूप से अंग्रेज़ी, फ़्रेंच, ग्रीक, लैटिन और संस्कृत में रस था। बम्बई में कुछ पुस्तक-विक्रेताओं को उनका पुस्तकों के लिए स्थायी आदेश रहता था और लकड़ी की पेटियों पर पेटियाँ भरी पुस्तकें आती रहती थीं। उनके वेतन का अधिक भाग इसी

में जाता था। उन दिनों वहाँ बिजली की रोशनी न थी, अतः बड़ी रात तक मिट्टी के तेल के दीये की सहायता से पढ़ना पड़ता था।

कहते हैं कि श्रीअरविन्द एक घण्टे में लगभग दो सौ पृष्ठ पढ़ लेते थे और एक बार पढ़ी हुई चीज़ उन्हें मौखिक याद हो जाती थी। एक दिन की बात है, श्रीअरविन्द कॉलेज से घर लौटे। थोड़ी देर में चारुचन्द्र दत्त और उनके कुछ साथी शतरंज खेलने आ गये और बाज़ी शुरू हो गयी, परन्तु श्रीअरविन्द ने उसमें साथ न दिया, वे अपनी पुस्तक में ही लगे रहे। मित्र ख़ूब शोर मचा रहे थे, हँसते, तालियाँ बजाते जाते थे। श्रीअरविन्द ने उस शोर-शराबे पर ज़रा भी ध्यान न दिया और अपनी किताब में लगे रहे। एक घण्टा बीत गया, डेढ़ घण्टा हो गया, चाय का समय आ गया। सब मित्र चाय की मेज़ पर इकट्ठे हो गये तो श्रीअरविन्द भी आ गये और चाय पीने लगे। यार लोगों ने सोचा चलो, देखें इतनी पढ़ी हुई चीज़ों में से इन्हें कुछ याद भी रहता है या नहीं।

चारु बाबू ने वह पुस्तक उठा ली जिसे श्रीअरविन्द पढ़ रहे थे और उनमें से तीन-चार पंक्तियाँ पढ़ कर सुनायीं और कहा, "अरविन्द बाबू, अब इस पृष्ठ का सारांश सुना दीजिये।" यह उनकी परीक्षा थी। उन्होंने एक भी पंक्ति, एक भी शब्द भूले बिना पूरा पृष्ठ सुना डाला, ऐसा लगता था मानों पुस्तक सामने रख कर सुना रहे हों। लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही। सच है, *"योगः कर्मसु कौशलम्।"*

—'लाल कमल' पुस्तक से

पृथ्वी पर मनुष्यों के बीच भागवत परम कृपा की मुक्तिदायिनी क्रिया के दो रूप हैं जो एक-दूसरे के पूरक हैं। ये दोनों रूप समान रूप से आवश्यक हैं, लेकिन इनका महत्त्व समान रूप से नहीं समझा जाता।

परम अक्षर शान्ति जो दुश्चिन्ता, तनाव तथा दुःख-दर्द से मुक्त करती है।

गतिशील सर्वशक्तिशाली प्रगति जो ज़ंजीरों, बन्धनों और जड़ता से मुक्त करती है।

शान्ति तो समस्त विश्व में समादृत होती तथा दिव्य मानी जाती है, लेकिन प्रगति का स्वागत केवल वे ही लोग करते हैं जिनकी अभीप्सा तीव्र तथा साहसपूर्ण होती है। —*श्रीमाँ*

"श्रीअरविन्द" के नाम के बारे में

३० नवम्बर १९६१

प्यारी छोटी बहन,

माताजी ने तुम्हारी लिखी वह चिट्ठी मुझे दिखलायी जिसमें तुमने "श्री" शब्द के बारे में लिखा है जो तुम्हें परेशान कर रहा है। श्रीमाँ चाहती हैं कि इस बारे में मैं अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करूँ। हाँ, तो मैं खरा और स्पष्टवादी होऊँगा।

यह मानना एकदम से ग़लत है कि श्री केवल एक सम्मानसूचक उपसर्ग है जिसे हम अरविन्द नाम के आगे लगाते हैं। ऐसी बात बिलकुल नहीं है। यहाँ श्री का अर्थ महाशय, श्रीमान् इत्यादि बिलकुल नहीं है। यहाँ श्री नाम का ही हिस्सा है। श्रीअरविन्द एक और अविभाज्य शब्द है। यही वह अन्तिम रूप है जिसे स्वयं श्रीअरविन्द ने अपने नाम को दिया। और मैं तुमसे कह सकता हूँ कि इस रूप में मान्त्रिक प्रभाव है।

श्री शब्द का उच्चारण अन्य कोई भारतीय या यूरो-अमरीकन अक्षर से अधिक कठिन नहीं है और मेरे ख़याल से यह लाभप्रद नहीं है कि हम किसी सामान्य यूरोपियन या अमरीकन की इस दलील के बहाने निचले स्तर पर उतर आयें कि सचमुच नाम अरविन्द है और श्री सम्मानसूचक उपसर्ग है, और यह कि यही ठीक है और दूसरों को भी हमारे मत को मानना चाहिये। मुझे भय है, यह एकदम से निरर्थक भ्रम है, बल्कि हमें तो प्रयास यह करना चाहिये कि सामान्य जनता को ऊपर उठायें और सत्य के साथ उसका साक्षात्कार करायें।

श्रीमाँ ने तुम्हें लिखा मेरा यह प्रबोधन देख लिया और वे इससे पूरी तरह सहमत हैं।

क्षमा करना, शायद मेरी चिट्ठी का लहजा कुछ पैना हो गया। मैं हूँ, तुम्हारा बहुत प्यारा बड़ा भाई—

नलिनीकान्त गुप्त

('शृण्वन्तु' फ़रवरी ८१ से साभार)

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

अगस्त

१. जब तक तुम निजी विचारों, मतों, पसन्दों से ऊपर नहीं उठ सकते तब तक तुम अच्छे कार्यकर्ता नहीं बन सकते। जब तक तुम्हारे अन्दर निजी पसन्दें हैं तब तक तुम ठीक वह चीज़ न कर पाओगे जिसकी ज़रूरत है।

२. थके बिना काम करने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि चाहे जो भी काम हो उसे भगवान् के अर्पण कर दो और तुम्हें जिस सहारे की ज़रूरत है उसे भगवान् में ही पाओ, क्योंकि भगवान् की शक्ति अपार है और 'उन्हें' जो कुछ भी सच्चाई के साथ अर्पित किया जाये 'वे' हमेशा उसका उत्तर देते हैं।

३. तुमने जो काम हाथ में लिया है उसमें सच्चे रहो तो भागवत कृपा हमेशा तुम्हारी सहायता के लिए मौजूद रहेगी।

४. जब तक कड़ी मेहनत न करो, तुम शक्ति नहीं पाते क्योंकि उस हालत में तुम्हें उसकी ज़रूरत नहीं होती और तुम उसके अधिकारी नहीं होते। तुम्हें शक्ति तभी मिलती है जब तुम उसका उपयोग करो।

५. काम में, कठोर सिद्धान्तों के द्वारा पैदा की गयी कठिनाइयों की अपेक्षा साधारणतः सहज और सामञ्जस्यपूर्ण कार्य अधिक अच्छा होता है, लेकिन वह भी निरपवाद नहीं है—हर अवसर पर आन्तरिक नीरवता में ऊपर का पथ-प्रदर्शन ग्रहण करना आदर्श अवस्था है। निरन्तर अभ्यास और सद्भावना से, यह सम्भव होता है।

६. चैत्य को पाने के लिए तुम्हें प्राण की कामनाओं पर विजय पानी होगी और मन को शान्त, निश्चल-नीरव करना होगा, उसके बाद भगवान् के प्रति निष्कपट निवेदन करना होगा। चैत्य मनुष्य में उन्हीं का यन्त्र है।

७. एकदम मौन की अपेक्षा तुम जो कहते हो उस पर संयम ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। सबसे अच्छा है जो उपयोगी हो उसे यथार्थ और यथासम्भव सच्चे ढंग से कहना सीखना।

८. आत्म-संयम सबसे पहली चीज़ है। अचञ्चल रहो और केवल कार्य करने के लिए ही नहीं, मुख्यतः 'रूपान्तर' साधित करने के लिए बल और शक्ति जुटाओ।

९. वीरता की **परिभाषा** है : सभी परिस्थितियों में सत्य का आग्रह रखना, आवश्यकता हो तो कठिन-से-कठिन विरोध के होते हुए भी उसकी घोषणा करना और उसके लिए भरसक, सब कुछ करने के लिए तैयार रहना।

१०. प्रत्येक वस्तु संक्रामक है। प्रत्येक अच्छी या बुरी चीज़ के अपने स्पन्दन होते हैं। अगर तुम उन स्पन्दनों को ग्रहण करो तो वह चीज़ तुम्हारे पास आती है। सच्चा योगी उन स्पन्दनों को जानता है और उनका उपयोग कर सकता है; इसी तरह वह तुम्हें शान्ति वगैरह दे सकता है। जो दुर्घटनाएँ कहलाती हैं वे भी संक्रामक होती हैं। तुम दूसरे के दुःख को पकड़ लेते हो और उसी की तरह दुःखी हो जाते हो।

११. अगर तुम अपनी ज़िम्मेदारी महसूस नहीं करते और अगर तुम हमेशा सतर्क नहीं रहते और परिश्रम नहीं करते, तो प्रकृति तुम्हारे साथ शरारत करेगी। अगर तुम प्रकृति की शरारत को रोकना चाहते हो, तो तुम्हें अपना काम चौकसी और ज़िम्मेदारी की भावना के साथ करना होगा। तुम्हें किसी चीज़ को अधूरा नहीं छोड़ना चाहिये। तुम्हें हमेशा सावधान और सतर्क रहना चाहिये और तुम सुरक्षित रहोगे।

१२. तुम्हें **अन्दर** से अपनी निम्न प्रकृति का स्वामी बनना चाहिये—अपनी चेतना को दृढ़ता के साथ ऐसे क्षेत्र में स्थापित करके जहाँ वह समस्त कामना और आसक्तियों से मुक्त हो, क्योंकि वहाँ वह दिव्य ज्योति और शक्ति के प्रभाव तले होती है। यह लम्बा और अत्यधिक माँग करने वाला परिश्रम है जिसे अचूक निष्कपटता और अथक अध्यवसाय के साथ हाथ में लेना चाहिये।

१३. नियमित रूप से तथा उत्तरोत्तर बढ़ते चलने के लिए तुम्हें हमेशा अपनी अभीप्सा की ज्वाला को जीवन्त रखना चाहिये।

१४. ... सभी परिस्थितियों में जड़ता सबसे बुरी है।
अभीप्सा एकमात्र उपचार है—एक ऐसी अभीप्सा जो शुद्ध ज्वाला की तरह सदा ऊपर उठती है और सत्ता की सभी अशुद्धियों को

जला डालती है।

१५. वैश्व शक्तियों की लय के कारण यह माना जाता है कि व्यक्ति में हर वर्ष जन्मदिन पर एक विशेष ग्रहणशीलता होती है।
अतः, इस दिन व्यक्ति अपने पूर्ण विकास के मार्ग पर शुभ निश्चय और नयी प्रगति करके इस ग्रहणशीलता का लाभ उठा सकता है।

१६. मनुष्य हमेशा शिकायत करते हैं कि उन्हें सहायता नहीं मिलती, लेकिन सच्ची बात तो यह है कि वे उस सहायता को अस्वीकार कर देते हैं जो **हमेशा** उनके साथ होती है।

१७. प्रश्न : मधुर माँ, हम जानते हैं कि हमें अमुक चीज़ें नहीं करनी चाहियें और सचमुच हम उन्हें करना भी नहीं चाहते, फिर भी हम उन्हें करते हैं। ऐसा क्यों होता है और हम इससे कैसे बच सकते हैं?
उत्तर : ऐसा तब होता है जब तुम्हारे अन्दर इच्छा-शक्ति और चेतना की शक्ति की कमी हो। अगर तुम अपनी अभीप्सा में सच्चे हो तो ये दोनों चीज़ें प्राप्त हो सकती हैं।

१८. श्रीअरविन्द ने घोषित किया है, 'समस्त जीवन योग है' और उन्होंने यह प्रतिपादित किया है कि तुम्हें जीवन **में** ही योग करना चाहिये।

१९. संकट और जोखिम हर अग्रगामी गति के भाग होते हैं। उनके बिना कभी कोई चीज़ हिलेगी भी नहीं; और साथ ही जो लोग प्रगति करना चाहते हैं उनके चरित्र को ढालने के लिए ये चीज़ें अनिवार्य हैं।

२०. क्रोध है प्राण पर लगे किसी अप्रिय आघात के प्रति प्राण की उग्र प्रतिक्रिया; और जब उसमें शब्दों और विचारों का भी समावेश हो जाता है तो मन प्राण के प्रभाव को प्रत्युत्तर देता और उग्रता के साथ प्रतिक्रिया करता है। क्रोध की कोई भी अभिव्यक्ति आत्म-संयम के अभाव का चिह्न है।

२१. प्रश्न : माँ, मेरा जीवन शुष्क है। वह हमेशा ऐसा ही रहा है, मेरे जीवन की शुष्कता बराबर बढ़ती रहती है।
उत्तर : यह किन्हीं बाहरी परिस्थितियों पर नहीं, तुम्हारी भीतरी स्थिति पर निर्भर है। यह इसलिए होता है क्योंकि तुम अपने मन के बहुत ही छिछले स्तर पर रहते हो। तुम्हें अपनी चेतना में कुछ गहराई पाने की कोशिश करनी चाहिये और फिर वहीं निवास करना चाहिये।

२२. साहसी बनो और अपने बारे में इतना अधिक न सोचो। तुम दुःखी और असन्तुष्ट इसलिए रहते हो क्योंकि तुम अपने छोटे-से अहंकार को अपनी तन्मयता का केन्द्र बना लेते हो। इन बीमारियों का बड़ा इलाज है—अपने-आपको भूल जाना।

२३. प्रश्न : मेरे हृदय को ख़ाली न छोड़ो माँ।
उत्तर : मैं हमेशा तुम्हारे हृदय में रहती हूँ।

२४. प्रश्न : मेरे अन्दर चैत्य पुरुष सोया हुआ है।
उत्तर : चैत्य सोया हुआ नहीं है। उसके साथ सम्बन्ध ठीक तरह से नहीं बना है क्योंकि मन बहुत ज़्यादा शोर मचाता है और प्राण बहुत बेचैन है।

२५. तुम जितने अधिक दुःखी होओगे और रोना-धोना करोगे उतने ही अधिक मुझसे दूर होते जाओगे। भगवान् **दुःखी नहीं हैं** और भगवान् को पाने के लिए तुम्हें समस्त दुःख और समस्त भावुक दुर्बलता को अपने से बहुत दूर फेंकना होगा।

२६. तुम्हें केवल शान्त विश्वास के साथ डटे रहना चाहिये और प्राण हड़ताल करना भूल जायेगा।

२७. अर्पण का रूप चाहे जैसा हो, जब वह सच्चाई के साथ किया जाता है तो हमेशा अपने अन्दर भागवत प्रकाश की एक चिनगारी लिये रहता है जो पूर्ण सूर्य में विकसित हो सकती और समस्त सत्ता को आलोकित कर सकती है।

२८. प्राण कामनाओं और ऊर्जाओं, आवेगों और प्रेरणाओं का, भीरुता और साथ ही शौर्य का स्थान है। उसमें लगाम लगाने का अर्थ है—इन सबको भागवत इच्छा की ओर मोड़ना और उस इच्छा के आधीन करना।

२९. मेरे बहुत प्यारे बालक, मेरे प्रेम में निवास करो, उसे अनुभव करो, उससे भर जाओ और सुखी रहो—और कोई भी चीज़ मुझे इससे ज़्यादा ख़ुश नहीं कर सकती।

३०. चिन्ता न करो। बस अपने अन्दर सदा चीज़ों को अच्छी तरह करने का संकल्प रखो।

३१. ऐसी कोई आदत नहीं जिसे बदला न जा सके।

योग में उतार-चढ़ाव

(गतांक से आगे)

अतिमानस-चेतना की मन्दाकिनी का अवतरण तभी सम्भव हो सकता है जब शिव-जैसे कुछ आधार तैयार हों, जो उसके ज्योति-सागर को, उसकी आनन्द-तरंगों को सहन ही न कर सकें बल्कि धारण करने में भी समर्थ हों और तभी उसके ऐश्वर्य का उपभोग जनसाधारण के लिए सुलभ हो सकता है।

यह तो हुई उनकी बात जिनके पग साधना के कंटकपूर्ण मार्ग पर काफ़ी दूर तक बढ़ चुके हैं, पर जिन लोगों ने यह पथ अभी-अभी पकड़ा है उनका पथ भी ख़तरों से ख़ाली नहीं है; उनको भी त्रिगुणात्मिका माया किसी-न-किसी रूप में घेरे रहती है। जिस साधक में रजोगुण की प्रधानता रहती है वह आत्म-समर्पण के मन्त्र में दीक्षित होते ही सोचने लगता है —हम साधक हैं। हमने योग आरम्भ किया है। लोग त्रिगुण के तिकड़म में पड़े हैं, हम इस पथ पर इतना बढ़ आये। भगवान् हमें यन्त्र बना कर दुनिया को जीतेंगे—इस तरह के अनेक भाव उठ-उठ कर साधक को बेलून के जैसा फुला देते हैं। पतले धागे के सहारे वह पतंग की तरह आकाश में उड़ता है और हवा के ज़रा से झोंके से गिर कर विनष्ट हो जाता है।

किसी-किसी के मन में वासना धर्म का रूप धारण करके आती है; वह अपनी वासना से उत्पन्न धर्म को भगवान् का कह कर उसी का निष्पादन करने के लिए प्राणपण से चेष्टा करता है और पद-पद पर हताश होता है। पर उसके मन में यह धारणा रहती है कि वह धर्माचरण कर रहा है और धर्म का मार्ग कंटकों से परिपूर्ण रहता ही है। वह सोचता है कि उसे सब कुछ सहते हुए दृढ़तापूर्वक लगे रहना होगा। इस भाव से प्रेरित होकर वह और भी तल्लीन होकर काम करने लगता है किन्तु उस काम को सुसम्पन्न करने में भगवान् की अपेक्षा उसी का अनुराग अधिक दिखायी देने लगता है।

इसी प्रकार जिसके हृदय में राजसिक अहंकार अधिक है, वह जब काम करने लगता है तब सोचता है—हमारे हृदय में बैठे भगवान् ही हमें

चला रहे हैं। इस काम में हमारा किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं है, पर वह नहीं जानता कि उसकी पलकों पर माया का इन्द्रजाल बिछा है। ये भाव उसे उन्नति के पथ पर नहीं ले जा सकते। जब तक भगवान् ज्ञानदीप जला कर अन्तस्तल के सम्पूर्ण तम का नाश नहीं करते तब तक इस प्रकार के मोह में फँस जाने का भय सदा बना रहता है।

जिस साधक में तमोगुण की प्रधानता रहती है उसमें दो प्रकार की उलझनों में फँस जाने की सम्भावना रहती है। उसके हृदय में उठता है कि मैं दीन हूँ, दुर्बल हूँ, घृणित और अकर्मण्य हूँ, मेरा जीवन-घट पापों से पूर्ण है। मुझसे सभी अच्छे हैं। मैं सबसे अधम हूँ। मेरे जैसे व्यक्ति को, जिसका मन दुर्बलताओं का घर है, भगवान् शरण कैसे देंगे? मानों उसकी दुर्बलता ही भगवान् की क्षमता से कहीं बड़ी है। जो सर्वशक्तिमान् कहलाता है उसमें इतनी भी शक्ति नहीं है? कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें थोड़ी-बहुत शान्ति मिल गयी है, वे उसी को सब कुछ मानने लगते हैं और कर्म से विमुख होकर बैठ जाते हैं। इसीलिए साधना-पथ को 'क्षुरस्य धारा' कहा गया है। ज़रा-सी चूक होते ही, अहंकार को ज़रा-सा प्रश्रय मिलते ही वह सिर पर विपत्ति का पहाड़ उठा लेता है।

यहाँ हम धन के बारे में दो-एक बातें कहेंगे। योगी कौन है? जिसने अपने अन्दर की सुप्त शक्तियों को जगाया है, भगवान् के साथ एकत्व प्राप्त किया है। पर हमारे संस्कार कुछ ऐसे हो गये हैं कि योगी का नाम सुनते ही हमारी आँखों के सामने एक ऐसे व्यक्ति का चित्र खिंच जाता है जो पर्णकुटी-निवासी हो, कन्थाधारी हो और मुट्ठी-भर चने पर जीवन बसर करता हो। प्रचलित मत के अनुसार आध्यात्मिकता की यही चरम अवस्था है। धन-धान्य, गृह-सम्पत्ति से हम जितनी जल्दी निस्तार पा जायें, उन्हें जितनी जल्दी तिलाञ्जलि दे दें उतना ही अच्छा। ये साधना-पथ के तीखे काँटे हैं, तीक्ष्ण शूल हैं, इनसे जितनी दूर रहा जाये उतना ही श्रेयस्कर है। श्रीअरविन्द का कहना है कि धन स्वयं अनर्थकारी नहीं है। अनर्थ का कारण है, असुरों द्वारा नियन्त्रित व्यक्ति के हाथों धन का दुर्व्यवहार। आजकल ऐसे कितने मनुष्य हैं जिनका धन आत्मोन्नति के लिए ख़र्च होता हो, जगत् में भगवान् का उद्देश्य पूरा करने के लिए व्यय होता हो? लक्ष्मी तो यथार्थ में भगवान् की ही है, हम तो उसके 'ट्रस्टी' हैं। प्रगतिवाद, साम्यवाद, जड़वाद

की ओर दौड़ने वालों में कोई विरले ही मिलेंगे जो अपने कमाये हुए धन को भगवान् की पूजा में लगा देना अपना कर्तव्य समझते हों। वे समझते तो यह हैं कि वे अपने धन के मालिक हैं, पर उनका धन उन्हें किस तरह ग़ुलाम बनाये हुए है, उनके ऊपर किस तरह उसका आधिपत्य है, यह वे नहीं जानते। हम देखते हैं कि जितना उनका धन पर शासन है उससे कहीं अधिक धन का उन पर शासन है। इस तरह जो धन आत्मा की उन्नति में सहायक हो सकता था वह, असुर की, अहं की पूजा में व्यय होकर, वासना की उपासना में नष्ट होकर, उनकी साधना के मार्ग में प्रचण्ड बाधक बन कर खड़ा हो जाता है। जिस धन से करोड़ों का उपकार हो सकता था उसका गत युद्ध के नरसंहार में किस तरह व्यय किया गया—यह कल की बात है। इस प्रकार दोष धन का नहीं, दोष है व्यक्ति का।

यदि हम दैवी सम्पदा को जड़ के अन्दर उतार कर इहजीवन को समृद्ध करना चाहें तो हमें कर्म करना होगा और कर्म के लिए धन भी चाहिये, शक्ति भी चाहिये। जो फूलों के स्वर्णिम पराग को रजकण-सम, काञ्चन को काँच-सम देखते हैं वे महान् हैं, पर जो सबमें रह कर सबसे अलग रह सकते हैं वे उनसे भी महान् हैं। हमें ऐसी अवस्था प्राप्त करनी होगी कि राजराजेश्वर के ऐश्वर्य में भी हमारा मन जल में नवनीत के गोले की तरह निर्लिप्त रहे, योगयुक्त रहे और दरिद्रता के कोड़े पड़ने पर, दुःख-यन्त्रणा की सरिता उमड़ने पर भी हिमगिरि-सा अचल, सागर-सा प्रशान्त और आत्मानन्द से भरपूर रहे।

जो साधक भगवान् के कर्मी बनना चाहते हैं, जो उनके हाथ के विश्वस्त यन्त्र बनने के अभिलाषी हैं, उन्हें धन-ऐश्वर्य का उपयोग अपनी किसी लालसा को चरितार्थ करने के लिए नहीं, बल्कि वसुधा पर देवों का राज्य स्थापित करने के लिए करना चाहिये। जो धनबल को असुर के पञ्जों से निकाल कर भगवान् के हाथ बिना किसी शर्त के सौंप सकेंगे उनका अन्तःकरण आप-से-आप शुद्ध होता जायेगा और उनके कर्म, उपार्जन-शक्ति और धन तीनों का बड़ा सुन्दर समर्पण होने लगेगा।

(क्रमशः)

—स्व. नारायण प्रसाद 'बिन्दु'

एक साधिका के नाम पत्र

सृष्टि का परिणाम है, चेतना का ब्योरेवार गुणन।

जब समग्र की दृष्टि और सभी ब्योरों की दृष्टि एक सक्रिय चेतना में मिल कर एक हो जायेंगी तो सृष्टि अपनी प्रगतिशील पूर्णता प्राप्त कर लेगी।

देश और काल में किन्हीं दो मनुष्यों की चेतना एक-सी नहीं होती और इन सभी चेतनाओं का योगफल भागवत चेतना की एक आंशिक और अल्प अभिव्यक्ति-मात्र होता है।

इसीलिए मैंने "प्रगतिशील पूर्णता" कहा, क्योंकि ब्योरे की चेतना की अभिव्यक्ति अनन्त और अविरत होती है।

८, ९ जनवरी १९७२

पहली शर्त है कि अपने निजी हितों को लक्ष्य न बनाओ।

पहले गुण जिनकी ज़रूरत है वे हैं : बहादुरी, साहस और अध्यवसाय।

और फिर इस बारे में सचेतन होना कि व्यक्ति को जो जानना चाहिये उसकी तुलना में वह कुछ भी नहीं जानता, उसे जो करना चाहिये उसकी तुलना में वह कुछ भी नहीं कर सकता, उसे जो होना चाहिये उसकी तुलना में वह कुछ भी नहीं है।

उसकी प्रकृति में जिस चीज़ की कमी है उसे प्राप्त करने के लिए, जो अभी तक वह नहीं जानता उसे जानने के लिए, जो अभी तक वह नहीं कर सकता उसे करने के लिए एक अपरिवर्तनशील संकल्प होना चाहिये।

निजी कामनाओं के अभाव से आने वाली ज्योति और शान्ति में व्यक्ति को सदा प्रगति करते रहना चाहिये।

व्यक्ति अपना कार्यक्रम बना सकता है :

"हमेशा अधिक अच्छा और आगे!"

और केवल एक ही लक्ष्य हो : भगवान् को जानना, ताकि उन्हें अभिव्यक्त कर सको।

दृढ़ बनी रहो और तुम आज जो नहीं कर सकतीं उसे कल कर पाओगी।

११ जनवरी १९७२

माँ, क्या अपने अन्दर रोगमुक्त करने की क्षमता विकसित करना सम्भव है?

सिद्धान्त रूप में, सचेतन रूप से दिव्य शक्ति के साथ एक होने से सब कुछ सम्भव है।

लेकिन उपाय खोजना होगा और यह व्यक्ति और स्थिति पर निर्भर करता है।

पहली शर्त है, ऐसी भौतिक प्रकृति का होना जो औरों से ऊर्जा खींचने की जगह ऊर्जा देती है।

दूसरी अनिवार्य शर्त है, यह जानना कि ऊपर से, अक्षय, निर्वैयक्तिक स्रोत से ऊर्जा को कैसे खींचा जाये।

१२ जनवरी १९७२

इस तरीक़े से व्यक्ति जितना अधिक ख़र्च करता है उतना अधिक पाता है, और एक ऐसा बर्तन बनने की जगह जो अपने-आपको देकर ख़ाली कर लेता है, एक अक्षय धारा बन जाता है।

दृढ़ अभीप्सा द्वारा ही व्यक्ति सीखता है।

१३ जनवरी १९७२

सुखी तथा सफल जीवन के लिए सच्चाई, नम्रता, अध्यवसाय और प्रगति के लिए कभी न बुझने वाली प्यास ज़रूरी हैं। सबसे बढ़ कर यह कि तुम्हें विश्वास हो कि प्रगति की सम्भावना असीम है। प्रगति यौवन है; तुम सौ वर्ष की उम्र में भी युवक हो सकते हो।

१४ जनवरी १९७२

जब शरीर वर्धनशील पूर्णता की ओर सतत प्रगति करने की कला सीख ले तो हम मृत्यु की अनिवार्यता पर विजय पाने के पथ पर अग्रसर होंगे।

१६ जनवरी १९७२

अगर चेतना के विकास को जीवन का मुख्य उद्देश्य मान लिया जाये

तो बहुत-सी कठिनाइयों को अपना समाधान मिल जायेगा।

बूढ़ा होने से बचने का सबसे अच्छा उपाय है, प्रगति को अपने जीवन का उद्देश्य बनाना। १८ जनवरी १९७२

सदा सीखना, बौद्धिक नहीं मनोवैज्ञानिक रूप से, स्वभाव में प्रगति करना, अपने अन्दर गुण पैदा करना और दोष ठीक करना ताकि हर चीज़ हमें अज्ञान और अक्षमता से मुक्त करने के लिए अवसर हो सके—तब जीवन बहुत अधिक रुचिकर और जीने-योग्य बन जाता है।

२७ जनवरी १९७२

श्रीअरविन्द धरती पर अतिमानसिक जगत् की अभिव्यक्ति की घोषणा करने आये। उन्होंने केवल अभिव्यक्ति की यह घोषणा ही नहीं की बल्कि आंशिक रूप से अतिमानसिक शक्ति को मूर्त रूप भी दिया और हमारे आगे उदाहरण रखा कि हमें अपने-आपको इस अभिव्यक्ति के लिए तैयार करने के लिए क्या करना चाहिये। जो सबसे अच्छी चीज़ हम कर सकते हैं वह यह है कि उन्होंने हमसे जो कुछ कहा है उस सब का अध्ययन करें, उनके उदाहरण का अनुसरण करने की कोशिश करें और अपने-आपको नयी अभिव्यक्ति के लिए तैयार करें।

इससे जीवन को अपना सच्चा अर्थ मिलता है और यह हमें सभी विघ्न-बाधाओं को जीतने में सहायता देगा।

आओ, हम नयी सृष्टि के लिए जियें और हम युवा रहते और प्रगति करते हुए अधिकाधिक मज़बूत बनते जायेंगे।

३० जनवरी १९७२

वे ऊर्जाएँ जिनका उपयोग मनुष्य प्रजनन के लिए करते हैं और जिनका उनके जीवनों में इतना अधिक महत्त्व है, उनका इसके विपरीत, उदात्तीकरण करके, प्रगति और उच्चतर विकास के लिए उपयोग होना चाहिये ताकि नयी जाति के आगमन की तैयारी हो। लेकिन उससे पहले प्राण और भौतिक को समस्त कामनाओं से मुक्त होना चाहिये अन्यथा महाविपदा को निमन्त्रण देना समझो। ३१ जनवरी १९७२

पहली चीज़ जो भौतिक चेतना को समझनी चाहिये वह यह है कि जीवन में हमें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वे सब इस तथ्य से आती हैं कि हमें जिस सहायता की आवश्यकता है उसके लिए हम ऐकान्तिक रूप से भगवान् पर निर्भर नहीं रहते।

केवल भगवान् ही हमें वैश्व प्रकृति की यान्त्रिकता से मुक्त कर सकते हैं। और यह मुक्ति नयी जाति के जन्म और विकास के लिए अनिवार्य है।

पूर्ण विश्वास और कृतज्ञता के साथ अपने-आपको पूरी तरह भगवान् के अर्पण करने से ही कठिनाइयों पर विजय मिलेगी।

१ फ़रवरी १९७२

जीवन में शान्ति और आनन्द के लिए आवश्यक शर्त है, पूरी सच्चाई के साथ वही चाहना जो भगवान् चाहते हैं। लगभग सभी मानव दुर्गतियाँ इस तथ्य से आती हैं कि हमें प्रायः हमेशा यह विश्वास होता है कि हम भगवान् की अपेक्षा ज़्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि हमें क्या चाहिये और जीवन को हमें क्या देना चाहिये। अधिकतर मनुष्य चाहते हैं कि दूसरे मनुष्यों को उनकी प्रत्याशाओं की पुष्टि करनी चाहिये और परिस्थितियों को उनकी कामनाओं की पुष्टि करनी चाहिये—इसीलिए वे कष्ट भोगते और दुःखी रहते हैं।

कामनाओं के लोप से जो शान्ति और निश्चल आनन्द प्राप्त होता है वह तभी आता है जब हम अपने-आपको पूरी सच्चाई के साथ भागवत इच्छा के अर्पण कर देते हैं।

चैत्य सत्ता इस बात को निश्चय के साथ जानती है; इसलिए अपने चैत्य के साथ एक होकर हम उसे जान सकते हैं। लेकिन पहली शर्त है, अपनी कामनाओं के आधीन न होना और उन्हें अपनी सत्ता का सत्य न मान बैठना।

४ फ़रवरी १९७२

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४८१-८५

वर दो कि मैं तुम्हारी उपस्थिति के बारे में सचेतन हो सकूँ।

—श्रीमाँ

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

नव जीवन को पाने की चाह करो

वास्तविक साधना के विषय पर आने से पहले कुछ और बातों को जान लेना ज़रूरी है। पहली बात यह कि यह रूपान्तर मानव प्रयत्न द्वारा नहीं, ऊपर से अवतरण द्वारा आयेगा। मैं कह सकता हूँ कि मानव प्रयास तो मुश्किल से एक प्रतिशत है, निन्यानबे प्रतिशत परिवर्तन तो अवतरण द्वारा ही आयेगा। और यह अवतरण होगा कैसे? हम अपने-आपको अतिमानसिक शक्ति के सम्पर्क में कैसे ला सकेंगे? दूसरी चीज़ है, शरीर के अणुओं को सचेतन बनाना और एक केन्द्र के चारों ओर जोड़ना। लेकिन यह कैसे हो? मैं तुमलोगों को ज़रा सावधान कर देना चाहूँगा। अतिमानसिक जीवन में संकल्प की बहुत बड़ी भूमिका होती है। मानव संकल्प और मानव विचार को बदलना होगा। अगर तुम्हारे संकल्प और विचार में शुरू में ही परिवर्तन न हो जाये तो बाद में कठिनाइयाँ आयेंगी। तुमको एक पुरानी कहानी मालूम होगी। एक आदमी आकर किसी पेड़ के नीचे लेट गया। यह एक विशेष पेड़ था और सबकी इच्छा पूरी करता था। आदमी भूखा था, उसने कहा—कुछ खाना मिल जाता तो... तुरन्त उसके आगे बहुत-से व्यञ्जन आ गये। अब उसे प्यास लगी, उसने सोचा—उसे पेय मिल जाता। और बहुत बढ़िया शरबत सामने आ गये। अब उसने कहा—कुछ नाच-गान भी हो जाता—और तुरन्त ही उसकी इच्छा पूरी हो गयी। उसने कहा—आह, यह क्या है? यह कोई भूत का खेल तो नहीं है? और झट भूत सामने आ गया। वह डर कर चिल्लाया—अरे, यह भूत अगर मुझे निगल जाये तो क्या होगा! और भूत उसे निगल गया! इस तरह तुम्हारे संकल्प और विचार वश में न हों तो उच्चतर जीवन सम्भव नहीं है।

इस नव जीवन को पाने के लिए पहला क़दम है, केवल उसी की चाह करना, सबसे बढ़ कर उसकी चाह करना और अपने मार्ग से बाधाओं को हटा देना—त्याग की कला। जब तुम अपने उद्देश्य की ओर चलते हो तो उस सबको निकाल बाहर करो जो विरोध करता है, जो तुम्हारा समय नष्ट करता है। एक बार निर्णय हो जाये तो दूसरा क़दम है अभीप्सा। यहाँ मैं

माँ की एक प्रार्थना सुनाऊँगा जो मूल रूप से फ्रेंच में है। उसमें हैं तो तीन ही पंक्तियाँ, पर शरीर के रूपान्तर के लिए वह सबसे अधिक प्रभावशाली प्रार्थनाओं में से है—

"हे परम प्रभो,
इस शरीर पर अधिकार कर लो।
अपने-आपको इसमें अभिव्यक्त करो।"

कैसी सुन्दर है यह प्रार्थना! तुम भगवान् से प्रार्थना करते हो, भगवान् के आगे अभीप्सा करते हो कि वे तुम्हारे शरीर को अपना लें और अपने-आपको प्रकट करें। यह सबसे सरल उपाय है। अगर भगवान् उतर कर तुम्हारे शरीर को अपना लें और अपने-आपको प्रकट करें तो फिर करने के लिए कुछ बाक़ी नहीं होता।

साधना का आरम्भ करने के लिए चार आधारभूत चीज़ों की ज़रूरत है। तीन माताजी और श्रीअरविन्द ने हमें बतलायी हैं—गुरु, शास्त्र और काल। हमारे गुरु हैं श्रीअरविन्द जो अपने शरीर में अतिमानस को उतार चुके हैं। वे हमारे बीच उपस्थित हैं और उनका ध्यान करके हम अतिमानस चेतना के सम्पर्क में आ सकते हैं। शास्त्र—उनके लिखे ग्रन्थ 'सावित्री', 'दिव्य जीवन' और 'योग-समन्वय' हमारे पास हैं। रही बात काल की, तो माताजी ने कहा कि अब रूपान्तर का समय है, श्रीअरविन्द के शब्दों में यही 'भागवत मुहूर्त' है। जो वर्तमान काल को चूक जायेंगे वे लम्बे काल तक के लिए चूक जायेंगे। ऐसा अवसर लम्बे काल तक न आयेगा।

चौथी आवश्यकता है—उत्साह। क्या तुम लक्ष्य के बारे में प्रोत्साहित अनुभव करते हो? क्या तुम भगवान् को पाने के लिए कटिबद्ध हो? यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। अगर तुम निश्चय करो कि तुम भगवान् को पाना चाहते हो तो भागवत आदेश तुम्हारे पक्ष में हो जायेगा। भागवत शक्ति अपने पूरे बल के साथ तुम्हारी सभी त्रुटियों और कमज़ोरियों के बावजूद तुम्हारी सहायता करने के लिए उतरेगी। निश्चय तुमको करना है—"हे भगवन्! मैं दिव्य शरीर और दिव्य जीवन के लिए प्रार्थना करता हूँ, लेकिन अपनी वर्तमान अपूर्णताओं, सीमित क्षमताओं, खण्डित व्यक्तित्व के कारण उसे पा सकना मेरे लिए असम्भव है—एक जीवन में नहीं, तीन सौ वर्षों में नहीं, तीन सौ जीवनों में भी असम्भव है। मेरी एकमात्र आशा तुम हो,

अगर तुम उतर आओ तो तुम मेरे शरीर पर अधिकार कर सकते हो। तुम मेरे मन पर अधिकार करके उसे प्रदीप्त कर सकते हो। तुम मेरे प्राण पर अधिकार करके, दूषित आवेशों को दूर करके उसे रूपान्तरित कर सकते हो।" रूपान्तर के लिए यही आशा है। सदियों से वे आशा देते आये हैं, आश्वासन देते हैं—जिसे तुम *गीता* में *बाइबल* में, श्रीअरविन्द की कृतियों में पाते हो कि जब कभी मनुष्य ने उनका द्वार खटखटाया और उन्हें पुकारा वे हमेशा आये। इस परम आश्वासन पर विश्वास कर, उस पर श्रद्धा रखते हुए तुम्हें आरम्भ करना चाहिये, पहला क़दम है, उनके लिए माँग करना।

लेकिन श्रीअरविन्द के योग में हर चरण सर्वांगीण और बहुमुखी होता है और मनोवैज्ञानिक पूर्णता की ज़रूरत भी होती है। मनोवैज्ञानिक पूर्णता जीवन, वस्तुओं, घटनाओं के प्रति हमारी वृत्ति से शुरू होती है। अगर हमारी वृत्ति ग़लत हो तो हमारी प्रतिक्रिया ग़लत होती है और हमारे जीवन में नब्बे प्रतिशत तो प्रतिक्रियाएँ ही होती हैं। मनोवैज्ञानिक पूर्णता पाने के प्रयास में एक चीज़ जो हमारी सहायता कर सकती है वह है, अपने-आपको भागवत पथ-प्रदर्शन पाने के लिए खोलना। अपने अधिकतर जीवन में हम भगवान् को ही अपनी वाणी सुनाने की आशा करते हैं, उनकी आवाज़ सुनने की कोशिश नहीं करते। हम उनसे हमेशा इस चीज़ या उस चीज़ के लिए प्रार्थना करते रहते हैं। उनकी बात सुनने के लिए न तो हमारी प्रवृत्ति होती है न हमारे पास समय ही होता है। सारी मानवजाति का यही दुःखद क़िस्सा है। तुमको उनकी बात सुनना सीखना चाहिये, उनका पथ-प्रदर्शन पाने की कोशिश करनी चाहिये, उनका पथ-प्रदर्शन अपने अन्दर खोजना चाहिये, और हर बार इसी वृत्ति से कि "भगवान् हर जगह हैं, मेरे शरीर के हर कोषाणु में, मेरे मन में और प्राण में हैं। यदि मैं उनके पथ-प्रदर्शन का आह्वान करूँ तो वे मुझे उसे ग्रहण करने के लिए तैयार कर देंगे।" तुम्हें ख़ुद से यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि पहले मुझे अपने-आपको तैयार करना चाहिये, यह करना चाहिये, वह करना चाहिये, अन्यथा मुझे उनका मार्ग-दर्शन कैसे मिलेगा। एक बार श्रीअरविन्द से पूछा गया था कि क्या अवतरण प्राप्त करने से पहले मन को स्थिर कर सकना ज़रूरी है? उन्होंने जवाब दिया—"नहीं, मेरे अन्दर स्थिर मन अवतरण के बाद आया था।" तो एक ओर तो तुम्हें भागवत पथ-प्रदर्शन का आह्वान करना

चाहिये, दूसरी ओर यह श्रद्धा रखो कि सर्वशक्तिमान्, अनुकम्पामय भगवान् पुकार का उत्तर अवश्य देंगे और अगर उन्हें पूरी निष्कपट सच्चाई के साथ बुलाया जाये तो निश्चय ही वे सहायता करेंगे। और आधा कार्य तो इसी में पूरा हो जायेगा।

मनोवैज्ञानिक पूर्णता के और भी पक्ष हैं। मैं उनके बारे में संक्षेप में कुछ कहूँगा। माताजी ने चम्पा के फूल को 'मनोवैज्ञानिक पूर्णता' नाम दिया है। उसकी पाँच पंखुड़ियाँ पाँच गुणों का प्रतिनिधित्व करती हैं—निष्कपटता, श्रद्धा, भक्ति, अभीप्सा और समर्पण। जिस पहले गुण पर माताजी ने ज़ोर दिया है वह है निष्कपटता या सच्चाई। इससे उनका मतलब है, अपनी चेतना में भागवत प्रभाव के सिवा किसी और प्रभाव को न आने देना। यह बहुत ज़रूरी है। इसके बिना यह विष के जैसा, अपनी चेतना में भागवत उपस्थिति का विरोधी बिन्दु रखने जैसा है। यद्यपि तुम भागवत शरीर के लिए अभीप्सा करते हो पर यह चीज़ तुमको आगे प्रगति न करने देगी। सच्चाई का मतलब है, अपने-आपको दिव्य उपस्थिति के चारों ओर लगाये रखना।
(क्रमशः)

—नवजात जी

कृतज्ञ होने का अर्थ है, परमोच्च की उस अद्‌भुत दिव्य कृपा को कभी न भूलना जो हर एक को उसके अपने बावजूद, उसके अज्ञान, ग़लतफ़हमियों, अहंकार, उसके विरोधों तथा विद्रोह के बावजूद, छोटे-से-छोटे रास्तों से उसके भागवत लक्ष्य की ओर ले जाती है।

हमारे हृदय में कृतज्ञता की पवित्र, ऊष्माभरी, मधुर तथा देदीप्यमान अग्नि हमेशा प्रज्वलित रहनी चाहिये; भागवत कृपा के प्रति कृतज्ञता की अग्नि जो साधक को उसके लक्ष्य की ओर ले जाती है—जितना अधिक वह कृतज्ञ होता है, भागवत कृपा की इस क्रिया को स्वीकार करता और उसके प्रति आभारी होता है, रास्ता उतना ही छोटा हो जाता है।

—श्रीमाँ

"मेरी सारी सत्ता तेरे सम्मुख कृतज्ञता में साष्टांग प्रणत है...।"

'योग के तत्त्व'

नींव

ऐसा कब कहा जा सकता है कि साधक ने साधना में अपनी नींव रख दी है?

जब उसने शान्ति, समता, भक्ति और आध्यात्मिक अनुभूति की निरन्तरता स्थापित कर ली हो।

प्रकृति में शान्ति और समता स्थापित करने का सही तरीक़ा क्या है?

शान्ति और समता तुम्हारे ऊपर रहती हैं, तुम्हें उन्हें अपने मन, प्राण और शरीर में नीचे उतारना है। और जब तुम्हें कोई चीज़ सताये तब तुम्हें उस चीज़ को अस्वीकार करना होगा जो तुम्हें सताती है और तुम्हारे अन्दर अशान्ति पैदा करती है।

क्या शान्ति और समता माँ की कृपा द्वारा उतरती हैं?

अन्तरात्मा की अभीप्सा और माँ की कृपा के द्वारा ही वे नीचे उतरती हैं।

कौन-सा सच्चा संकेत यह सूचित करता है कि प्रकृति में समता स्थापित हो गयी है? क्या यह बाहर या अन्दर से आने वाली समस्त विक्षुब्धता का प्रतिकार किये बिना, पूर्ण अचञ्चलता के साथ उसे स्वीकार करना है?

उसका सामना विक्षुब्ध हुए बिना और शान्ति से उसे अस्वीकार करके करना चाहिये। भले तुम उसका प्रतिकार करो या न करो, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ना चाहिये। सिर्फ़ जब तुम उसके विरुद्ध क्रिया करो तब तुम्हें क्रुद्ध हुए बिना, उत्तेजना, दुःख या दूसरी किसी भी व्याकुल करने वाली गतिविधियों के बिना, शान्ति से उसका सामना करना चाहिये।

जब व्यक्ति ने समता प्राप्त कर ली हो तब क्या हम कह सकते हैं कि उसमें अहम् नहीं रहा?

समता का मतलब अहम् की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि इच्छा और आसक्ति का न होना है। अहम् की भावना लुप्त हो सकती है या वह सूक्ष्म या सघन रूप में बनी रह सकती है—यह व्यक्ति पर निर्भर करता है।

क्या भगवान् के अवतरण का मतलब शान्ति, पवित्रता और नीरवता का अवतरण है?

यह भगवान् के अवतरण का एक भाग है, पूरा अवतरण नहीं।

मैंने देखा है कि जब मेरी सत्ता में शान्ति उतर आती है तो वहाँ उच्चतर शक्ति की क्रीड़ा होती है। क्या यह शक्ति, शान्ति की शक्ति से अलग है?

नीरवता शक्ति की उचित क्रीड़ा की अवस्था है। शक्ति और शान्ति दोनों ही भगवान् की दो अलग-अलग शक्तियाँ हैं।

भागवत शक्ति को ग्रहण करने का सामर्थ्य कैसे बढ़ाया जाये?

पहली आवश्यकता है, मन की नीरवता—बाक़ी के लिए अभीप्सा और अभ्यास पर टिके रहना होता है।

शान्त मन का सही अर्थ क्या है? क्या इसका मतलब मन में किसी विचार का न होना है?

नहीं, यह ज़रूरी नहीं है कि वहाँ कोई विचार न हो। जब कोई विचार न हो तब वह निश्चल-नीरवता होती है। लेकिन मन को तब शान्त कहा जाता है जब विचार, भाव इत्यादि वहाँ से गुजरें, फिर भी वह क्षुब्ध न हो। उसे ऐसा अनुभव हो कि विचार उसके अपने नहीं हैं; सम्भवतः वह उनका निरीक्षण तो करे, पर किसी भी चीज़ से विक्षुब्ध न हो।

साधना में सक्रियता और निष्क्रियता का सच्चा अर्थ क्या है?

अभीप्सा तथा तपस्या में सक्रियता, ग़लत शक्तियों का त्याग, सच्ची क्रिया के लिए स्वीकृति, श्रीमाँ की शक्ति को क्रिया करने देना—ये ही हैं साधना की उचित क्रियाएँ।

—श्रीअरविन्द

आपकी आज्ञा शिरोधार्य है

सुदर्शन सिंह चक्र जी की लेखनी पौराणिक कथाओं को एक अपूर्व छटा प्रदान करती है। उसी की एक बानगी—

लंका पर विजय प्राप्त कर श्रीराम अभी युद्ध के शिविर में ही विराजमान थे कि उनकी दृष्टि बद्धकर विभीषण पर पड़ी—मानों प्रेम और विनय साकार हो उठे हों। विभीषण के होठों से निकला "नाथ" शब्द श्रीराम के कानों में मधु उँडेल गया। "लंकानाथ क्या चाहते हैं?" राघवेन्द्र ने सप्रेम विभीषण से पूछा। लंका-विजय से पहले समुद्र-तट पर जिन्हें सागर के खारे जल से तिलक करके रामचन्द्र ने 'लंकेश' कहा था आज उन्हें लंका के सिंहासन पर लक्ष्मण के करों ने सम्मानपूर्वक अभिषिक्त कर दिया था। अपने राजकीय वेश में विभीषण सचमुच सौन्दर्य की प्रतिमा से दीख रहे थे। उनकी वह छटा देख राघवेन्द्र की भी आँखें जुड़ा गयीं। एक बार फिर "नाथ" पुकार कर विभीषण प्रभु के चरण-कमलों में गिर पड़े।

"राजन्, चिरन्तन हृदय में बसने वाले पैरों में शोभा नहीं पाते" कहते न कहते रामचन्द्र ने विभीषण को अंक में भर लिया।

जिन त्रिभुवन के स्वामी के स्पर्श मात्र के लिए देवतागण भी तरस कर रह जाते हैं उन्हीं के गाढ़ आलिंगन में बँध कर विभीषण अपनी सुध-बुध खो बैठे। लंकाधिपति बालक की भाँति क्रन्दन कर उठे—"हे नाथ! दयानिधि, राक्षस कुल में उत्पन्न मुझ अधम को आपने अपना कर सम्पूर्ण राक्षसकुल को गौरवान्वित कर दिया! अब मेरी बस एक ही विनती है प्रभो! अयोध्या प्रस्थान करने से पहले बस एक बार प्रभु के श्रीचरण लंका में पड़ जायें तो वह पुनीत हो उठेगी, तीर्थ बन जायेगी। लंका के कोष, उसकी सम्पत्ति तथा उसके स्वर्ण-प्रासाद एक बार प्रभु की पावन दृष्टि से पवित्र हो जायें, बस इतना करके प्रभु मुझे कृतार्थ कर दें तो मेरे जन्म-जन्मान्तरों की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी।" विभीषण की आँखों से अनुग्रह झर रहा था। प्रभु ने दृष्टि उठा कर प्रेमपूर्वक कहा—"मित्र लंकेश! आपके अनुग्रह को टालने का साहस मुझमें नहीं है लेकिन, बन्धु! सशरीर जाना तो इस समय मेरे लिए असम्भव होगा, क्षण-भर में मन से वहाँ की यात्रा कर आता हूँ।"

लंकाधिपति श्रीराम के सजल हो रहे नेत्रों को देख आश्चर्य में डूब

गये—"लेकिन देव, पुष्पक तो पलक झपकते हमें वहाँ पहुँचा देगा आप..."

विभीषण की बात पूरी होते न होते प्रभु के रुँधे कण्ठ की भीगी वाणी फूट पड़ी—"मित्र! तुम तो जानते ही हो कि संजीवनी लाने के प्रसंग में पवन कुमार अयोध्या गये थे तो भरत कुमार से मिल कर आये थे, उनकी हालत का वर्णन सुन कर हम सबका कलेजा मुँह को आ गया था। भूमि को खोद कर नीचे कुश बिछा कर अनुज किस तरह मेरे नाम का निरन्तर जाप कर रहे हैं, उनके नेत्र रात-दिन मेरी पादुकाओं पर ही टिके रहते हैं और निराहार के कारण वे सूख कर काँटा हो गये हैं। हनुमानजी ने कहा था कि इतना पवित्र, सात्त्विक-कठोर तप त्रिभुवन ने सम्भवतः कभी देखा नहीं और आगे भी देखने की सम्भावना नहीं। इसलिए मित्र! भाई भरत का स्मरण आते ही मुझे एक पल एक कल्प प्रतीत होता है।" श्रीरघुनाथ का गद्‌गद कण्ठ बोलने में असमर्थ हो रहा था।

कुछ रुक कर श्रीराम पुनः बोल उठे—"बन्धु! अयोध्या छोड़े आज चौदह वर्ष पूरे हो जायेंगे। पिता ने चौदह वर्ष के वनवास की अवधि निश्चित की थी और आज की रात्रि के समाप्त होने के साथ-साथ वह अवधि भी पूरी हो जायेगी। चित्रकूट में भरत से विदा लेते समय उन्होंने अपना संकल्प मुझे सुना दिया था..."

"कैसा संकल्प" विभीषण पूछ बैठे, यद्यपि उन्होंने उसका अनुमान लगा लिया था।

यही कि "चौदह वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद यदि मैंने एक दिन का विलम्ब किया तो भरत अगले दिन के सूर्योदय की प्रतीक्षा शरीर में रहते नहीं करेंगे।"

विभीषण स्तब्ध रह गये। उनके मुख से एक शब्द भी न निकल सका।

श्रीराम की आर्त वाणी फिर उनके कानों में गूँज उठी—"वह कल का ही दिन है मेरे मित्र! अवधि समाप्त होने के बाद पहुँचने पर अनुज मुझे सशरीर न मिलेगा।" प्रभु के नेत्रों से टपकते बिन्दुओं ने झड़ी का रूप ले लिया। स्वर में वही अनुनय था, विभीषण से बोले—"आप मुझ पर अनुग्रह कीजिये लंकेश! कोई ऐसी व्यवस्था कीजिये कि मैं कल सूर्योदय के पूर्व अयोध्या पहुँच जाऊँ। राम का इससे बड़ा दूसरा कोई उपकार नहीं कर सकते आप" राघवेन्द्र के कर कमल अनायास जुड़ गये।

"नाथ" विभीषण प्रायः चीत्कार करके गिर पड़े श्रीचरणों पर और फूट-फूट कर रो उठे। बड़ी कठिनाई से उनके कण्ठ से बस इतना ही फूट पड़ा—"नाथ, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, अब क्षण-भर का विलम्ब भी असह्य है। तुरन्त प्रस्थान कर हम सब कल सूर्योदय के पूर्व भरतजी के दर्शन कर धन्य हो जायेंगे।"

'पुरोधा', नवम्बर १९९८ से —वन्दना

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

अधिष्ठाता : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

नोट, रुपये-पैसे इत्यादि सबके पीछे एक शक्ति होती है, यह है विनिमय की शक्ति—यही धन कहलाती है। —श्रीमाँ

Space on this page is offered by:

DEORAH SEVA NIDHI

Charitable Trust Dedicated to Service
(Founder trustee: Late Shri S. L. Deorah)
25, Ballygunge Park, Kolkata - 700 019

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

– श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

Date of Publication: 1st August 2018
Rs. 15.00 (Monthly)

A school by The Vatika Group vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 4. My son's journey with this school started 5 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 4

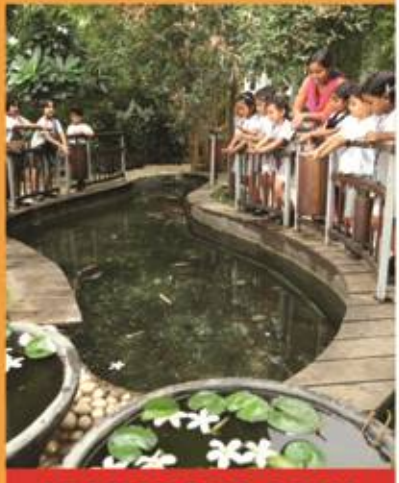

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2018-19

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 onwards

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gurugram
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gurugram
+91 124 4681600, +91 9821786363